शाश्वत् सुख का मार्गदर्शक मासिक-पत्र

आत्मधर्म

卐 : संपादक : जगजीवन बाउचंद दोशी (सावरकुंडला) 卐

जून : १९६५ ☆ वर्ष २१वाँ, ज्येष्ठ, वीर नि०सं० २४९१ ☆ अंक : २

अब हमारा मन अन्यत्र नहीं लगता

नियमसार के १३०वें कला में श्री पद्मप्रभ मुनिराज कहते हैं कि:—

जिसप्रकार अमृत भोजन का स्वाद लेने के बाद देवों का मन अन्य भोजन में नहीं लगता, उसीप्रकार ज्ञानात्मक सौख्य को जानकर हमारा मन उस सौख्य के निधान चैतन्यमात्र चिन्तामणि के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं नहीं लगता।

श्री पद्मनन्दि मुनिराज भी 'एकत्व भावना' में कहते हैं कि:—

श्री गुरु उपदेश के प्रताप से हमें एक मोक्षपद ही प्रिय है, संसार संबंधी अन्य कुछ भी वास्तव में हमें प्रिय नहीं है।

किंचित् संसारसम्बन्धी बंधुरं नेति निश्चयात्।
गुरुपदेशतोऽस्माकं निःश्रेयसपदं प्रियम्॥ ७॥

वार्षिक मूल्य
तीन रुपया

[२४२]

एक अंक
चार आना

श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

विषय-सूची

१. मोह नींद से अब भी जग जा.....
२. क्यों कर्ता बनते जाते हो
३. भाव शुद्धि की महिमा
४. सन्त परोसते हैं परमात्मा का प्रसाद
५. भगवान श्री ऋषभदेव
६. ध्यान
७. वस्तु स्वभाव
८. स्वतन्त्र वस्तु की वैराग्य भावना
१०. जयपुर में धार्मिक शिक्षण शिविर
११. क्या व्यवहार रत्नत्रय सच्चा मोक्षमार्ग है
१२. छहढाला प्रवेशिका परीक्षा पत्र
१३. समाचार संग्रह

चित्र-परिचय

१. आमोद प्रमोद में डूबे हुए श्री सुकुमाल
२. ध्यानस्थ अवस्था में लीन श्री सुकुमाल मुनि
३. पंच परमेष्ठी

शाश्वत् सुख का मार्गदर्शक मासिक-पत्र

आत्मधर्म

卐 : संपादक : जगजीवन बाउचंद दोशी (सावरकुंडला) 卐

जून : १९६५ ☆ वर्ष २१वाँ, ज्येष्ठ, वीर नि०सं० २४९१ ☆ अंक : २

मोह नींद से अब भी जग जा...!

[आमोद-प्रमोद में डूबे हुए श्री सुकुमाल]

सुकुमाल का जन्म होते ही पिता सेठ सुरेन्द्रदत्त दीक्षा लेकर दिगम्बर साधु बन गये थे। एक आचार्यश्री ने बतलाया कि किसी मुनि को देखते ही सुकुमाल भी मुनि दीक्षा ग्रहण कर लेगा। यह सुनकर माता यशोभद्रावती ने इकलौते सुपुत्र को गृहस्थी में फँसाये रखने के लिये अनेक प्रकार से राग-रंग आमोद-प्रमोद के साधनों की व्यवस्था करा दी। अपनी ३२ पत्नियों के बीच सुकुमाल

रात-दिन आमोद-प्रमोद में डूबे रहकर सांसारिक (-भ्रान्तिजन्य कल्पना के) सुखों में मग्न रहने लगे। एक बार चातुर्मास में श्री गंधराचार्य नगर के समीप उद्यान में आकर ठहरे हुए थे। उन्होंने अपने ज्ञान से जाना की सुकुमाल की आयु सिर्फ ३ दिन ही रह गई है। उसकी माता यशोभद्रा पुत्र ममत्ववश किसी भी साधु को नगर में नहीं आने देती। तब आचार्य ने अर्धरात्रि के समय एक प्रेरणाप्रद सम्बोधन गाया—

मोह नींद से अब भी जग जा, क्यों सोता बेहालजी,
कल्पित सुख की दुखमय घड़ियाँ, आगे का क्या हाल जी॥ मोह०॥
काल अनंत वृथा युं गुमाये मातृ-पय-रुदन अनंतजी।
अशरण गोद, अनित्य ही माता दुख में सुख क्यों मानेजी॥
वीर विजेता तज सब ममता चेतन कर उजियालाजी।
एकत्व विभक्त स्वरूप सम्हलके, आस्रवमल परिहारोजी॥
सम्यक्रत्नत्रयी है संवर, गह अपना अधिकारोजी।
शान्ति समर बलकी वृद्धि से निर्जरभाव प्रकाशोजी॥
लोक अकृतिम तूं है अकृतिम मूढ़ बने पर कर्त्ताजी।
बोधि-रत्न महादुर्लभ जानि चेतनकुमार तूं ज्ञाता जी॥
वस्तु स्वभाव है धर्म तुम्हारा, है सो ले सुखदाता जी।
अधिकारी अधिकार समझ कर तज सब भ्रम दुखदाताजी॥
मोहनींद से अब भी जगजा सोता क्या सुकुमाल रे!
तीन दिवस की शेष रह गई उमर न तुझको ख्याल रे!!
सुकुमाल रे! सुकुमाल रे!!

यह आवाज सुकुमाल के कानों में पड़ी, वह जगकर चारों ओर देखने लगा, मुझे किसने जगाया, क्या सचमुच मेरी तीन दिन की आयु शेष रह गई है? क्या यह स्वप्न है या सत्य? तब तो मुझे अवश्य आत्मकल्याण करना चाहिये। वह रस्सी के सहारे नीचे उतरकर गंधराचार्य के पास जाकर दीक्षा लेकर साधु बन तपस्या करने लगा। उन्हें तीन दिन तक स्यालनी खाती रही फिर भी नहीं डिगे। निज शक्तिरूप उपादान का बल जागृत किया कि तुरंत भविष्य के अनुरूप सम्पूर्ण साधन मिल ही गये। देखो राग और विराग में कितना अंतर है।

[सन्मति-संदेश से साभार उद्धृत]

ध्यानस्थ अवस्था में लीन श्री सुकुमाल मुनि

सिद्धपद प्राप्त किया

भावशुद्धि की महिमा

भावशुद्धि मोक्ष का मार्ग है और वही सर्व उपदेश का सार है

[भावप्राभृत गाथा १२४ से १३२ के प्रवचन से]

हे जीव! आराधना पथ के अग्रसर ऐसे पंचपरमेष्ठी का ध्यान करो!

भावशुद्धि का उपदेश देते हुए आचार्यदेव कहते हैं कि हे जीव! धर्म की आराधना के मार्ग में अग्रसर होकर जो मोक्ष की ओर आगे बढ़े हैं, ऐसे पंचपरमेष्ठी का तू ध्यान कर। धर्म की आराधना के नायक उस धर्मपथ पर आगे चलनेवाले हैं; उनके शुद्धस्वरूप को जानकर उनका ध्यान कर... उन जैसे शुद्ध आत्मस्वरूप का ध्यान कर। जिसप्रकार वीरपुरुष पूर्वकालीन-वीरपुरुषों के युद्ध पराक्रम आदि की बात सुनकर उत्साहित होता है, उसीप्रकार जिसे धर्म की आराधना का प्रेम है, वह धर्म में अग्रसर धर्मात्माओं की आराधना का वर्णन सुनकर आराधना के प्रति उत्साहित होता है, प्रेम से-रुचि से-आदर से उन आराधक धर्मात्माओं की बात सुनता है। पंचपरमेष्ठी में से अरिहन्त और सिद्ध तो आराधना पूर्ण करके स्वयं आराध्य हो गये हैं और आचार्यादिक उस आराधना में अग्रसर हैं। ऐसे परमेष्ठियों के स्वरूप का चिंतवन करने से भावशुद्धि होती है। हे मुनि! तथा हे भव्य जीवो! तुम ऐसे उत्तम-मंगल-शरणरूप परमेष्ठी का ध्यान करो। उनके स्वरूप का चिंतवन करने से शुद्ध आत्मा का स्वरूप प्रतिभासित होता है... और उसके ध्यान द्वारा आराधकभाव के विघ्न दूर होकर मंगल की प्राप्ति होती है।

अहा, अरिहंत और साधु तो मोक्षमार्ग में अग्रसर होकर आगे-आगे बढ़ते जा रहे हैं और जगत के जीवों को उसी मार्ग पर चलने का आदेश दे रहे हैं। उनके स्वरूप के ध्यान से सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान-सम्यक्चारित्र आदि का स्वरूप भलीभाँति जाना जाता है अर्थात् भेदज्ञान होता है। जगत में मंगलस्वरूप तो ऐसे परमेष्ठीपद हैं, वे ही शरण हैं और वे ही उत्तम हैं। आराधना के नायक ऐसे पंचपरमेष्ठी भगवंत वीर हैं, वीरता द्वारा वे कर्म को जीतनेवाले हैं। शुद्धस्वभाव की ओर उन्मुख होकर ही शुद्धात्मा का ध्यान होता है। जिसप्रकार केवली भगवान की स्तुति ज्ञायकस्वभाव के

अनुभव से होती है, उसीप्रकार पंचपरमेष्ठी का ध्यान भी शुद्ध आत्मा की सन्मुखता से ही होता है।—ऐसे ध्यान द्वारा शुद्धस्वरूप की प्राप्ति होती है, इसलिये उसका उपदेश है।

सम्यग्ज्ञानरूपी जल द्वारा भवरोग का नाश होात है।

ज्ञानरूपी निर्मल-शीतल जल को सम्यक्त्वादि भाव द्वारा पीकर भव्यजीव जन्म-मरण के दाह को नष्ट करता है और परमानन्द सुखरूप हो जाता है। सम्यग्ज्ञान के शांत निर्विकल्प रस का पान करने से संसार की समस्त वेदना का और भवरोग का नाश हो जाता है। भगवान की वाणी ऐसे शुद्धात्मा के शांतरस को दर्शाती है, इसलिये वह भी शीतल एवं भवताप को हरनेवाली है। पूजा में आता है कि—

'तुम वच शीतल चंद्र समान,
भवतपहरण सदा गुणखान,
दयानिधि हो.....'

हे नाथ! चैतन्य के निर्विकल्प शांतरस को दर्शानेवाली आपकी वाणी भी शीतल है... मानों अमृत झरता हो! इसप्रकार आपकी वाणी चैतन्यगुणों के भण्डार को बतलाकर भवताप को हरनेवाली है। श्रीमद् राजचंद्रजी भी कहते हैं:—

वचनामृत वीतराग के, परम शांतरसमूल;
औषधि जो भवरोग की, कायर को प्रतिकूल।

अहा, चैतन्यगृह में अनंत निधान हैं, उन्हें जिनवाणी बतलाती है। वह वाणी चैतन्य की सन्मुखता कराके शांतरस का वेदन करानेवाली है। अहा, ऐसी चैतन्य की सन्मुखता करानेवाली वाणी भवरोग की औषधि है.... हे जीव! तू अंतर्मुख होकर निर्मलभाव प्रगट करके ज्ञानमय शीतल शांत चैतन्यरस का पान कर कि जिससे जन्म-मरण के तीव्र दाहरूपी दु:खों से मुक्त होकर तू स्वयं सुखस्वरूप हो जायेगा। समयसार के अंत में फल बतलाते हुए आचार्यदेव कहते हैं कि—इस समयप्राभृत का पठन करके अर्थतत्त्व से जानकर, शुद्धात्मारूप अर्थ में जो स्थिर होगा वह जीव स्वयमेव उत्तम सौख्यरूप परिणमित हो जायेगा। यानी सुख कहीं बाहर से नहीं आयेगा किंतु आत्मा स्वयं निजस्वभाव से ही सुखरूप हो जायेगा। सुख आत्मा से कोई भिन्न वस्तु नहीं है; आत्मा ही स्वयमेव सुखस्वभावी है। अंतर्मुख होकर निजस्वभाव की आराधना करने से स्वयं ही सुखरूप हो जाता है। आत्मा शांत चैतन्यरस का पिण्ड है, उसका ध्यान किये बिना कभी शांति का वेदन नहीं

होता और दाह नहीं मिटती। सम्यग्ज्ञान में ऐसी शक्ति है कि रागादिक मल को दूर करके निर्मल शांतभावरूप जल द्वारा आकुलता के ताप को दूर करता है। इसप्रकार सम्यग्ज्ञान द्वारा आत्मा सुखरूप होता है। इसलिये ज्ञान की भावना करके उसमें एकाग्रता करने का उपदेश है।

सम्यग्दर्शनादि भावशुद्धि द्वारा ही दु:ख का नाश एवं सुख की प्राप्ति होती है—

जिसप्रकार धरती में पड़ा हुआ बीज जल जाने के बाद फिर वह नहीं उगता, उसीप्रकार संसार के बीजरूप जो कर्म हैं, उसे चैतन्य के ध्यानरूप अग्नि द्वारा जला देने से, जीव को पुन: जन्म-मरण के अंकुर नहीं उगते। सम्यग्दर्शन द्वारा भी संसार का बीज छिद जाता है। सम्यग्दर्शन भी ध्यान द्वारा होता है। यहाँ श्रमण को संबोधित करके उत्कृष्ट उपदेश है कि—हे मुनि! तू भावश्रमण होकर धर्म-शुक्लध्यान द्वारा कर्म का सर्वथा नाश कर। अनादि कर्म की परम्परा चैतन्य के ध्यान द्वारा छिद जाती है। सम्यग्दर्शनादि भावशुद्धि ही दु:ख के छेदन का तथा सुख की प्राप्ति का उपाय है।

इस जगत में जिन्होंने सम्यग्दर्शनादि भावशुद्धि प्रगट की है, ऐसे जीव ही सुख की परम्परा को प्राप्त होते हैं। तथा जो भावशुद्धि से रहित हैं, ऐसे द्रव्यश्रमण तो दु:ख को ही प्राप्त होते हैं। इसप्रकार भाव के गुण-दोष को जानकर हे भव्य! तू शुद्धभाव से संयुक्त हो! सम्यग्दर्शनादि शुद्धभावरूप गुण के बिना संयमादि सब निष्फल हैं। राग से जिसकी जाति ही भिन्न है—ऐसे सम्यक्त्वादि भावशुद्धि से ही सिद्धि होती है।

हे जीव! तू सम्यग्दर्शनादि शुद्धभाव के गुणों को जान और मिथ्यात्वादि अशुद्धभावों के दोष को जान—इन दोनों को जानकर अपने श्रेय के कारणरूप ऐसे शुद्धभाव की आराधना कर। सम्यग्दर्शन तो गुणों की खान है, और मिथ्यात्व तो सर्वदोषों का मूल है। **सम्यग्दर्शन, वह जिनभावना है; उसमें संसार को छेदने की शक्ति है।** मिथ्यादर्शनसहित जीव चाहे जितना करे, तथापि संसार का छेदन नहीं कर सकता और दु:ख ही प्राप्त करता है। इसलिये हे जीव! सांसारिक दु:खों से छूटने के लिये तू मिथ्यात्व का छेदन करके भावशुद्धि प्रगट कर। भावशुद्धि ही सर्व उपदेश का संक्षिप्त सार है। भावशुद्धि की महिमा को समझकर तू सम्यग्दर्शनभावसहित हो.... सम्यग्ज्ञान सहित हो.... समयक्चारित्र सहित हो।—ऐसी भावशुद्धि, वह मोक्ष का पंथ है तथा वही सर्व उपदेश का सार है।

तीर्थंकर पद, गणधर पद आदि महान पदवी भावशुद्धिवंत सम्यक्त्वी ही प्राप्त करते हैं।

भगवान जिनवर ने संक्षेप से ऐसा कहा है कि—सम्यग्दर्शनादि भावशुद्धि सहित जीव महापुण्य के अभ्युदयपूर्वक तीर्थंकर, गणधर, चक्रवर्ती, तीर्थंकर का पुत्र आदि होता है... गणधर तो सर्वज्ञपुत्र हैं। धवला में गौतम गणधर को 'सर्वज्ञपुत्र' कहा है। ऐसी महा पवित्र पदवी कौन प्राप्त करता है ?—तो कहते हैं कि जो जीव आराधना सहित हो, वही ऐसे तीर्थंकर पद, गणधर पद, चक्रवर्ती पद, बलदेव पद आदि अभ्युदय को प्राप्त करता है। भावशुद्धि के बिना ऐसी पदवी नहीं होती।

सम्यग्दर्शन की शुद्धि के बिना किसी को किंचित् धर्म नहीं होता। जिसने ज्ञायक चिदानंदस्वभाव को निर्विकल्प प्रतीति में लिया है, उसे बीच में आराधकभाव सहित के पुण्य से तीर्थंकरपद आदि की प्राप्ति होती है। धर्मात्मा आराधक को अशुभ आयु का बंध नहीं होता, अशुभ के समय उसे नये भव की आयु का बंध नहीं होता। अज्ञानी को भावशुद्धि भी नहीं है और उसे उत्तम पुण्य का बंध भी नहीं होता। अहो, तीर्थंकर, गणधरादि उत्तमपद भावशुद्धि का ही प्रताप है।

भावशुद्धिवंत संतों के प्रति प्रमोद और नमस्कार

आचार्यदेव प्रमोद सहित कहते हैं कि—अहा, ऐसी भावशुद्धि के धारक मुनिवर धन्य हैं... उन्हें नमस्कार हो।

ते धन्याः तेभ्यः नमः दर्शनज्ञानचरण शुद्धेभ्यः।
भावसहितेभ्यः नित्यं त्रिविधेन प्रणष्टमायेभ्यः ॥१२९॥

अहा, श्रेष्ठ सम्यग्दर्शन से, विशुद्ध ज्ञान से तथा निर्दोष चारित्र से जो शुद्ध हैं, तथा जिनके मायाचार नष्ट हुआ है, ऐसे शुद्धभाव सहित श्रमण धन्य हैं, नित्य त्रिविधरूप से उन्हें नमस्कार हो। अहा, ऐसे भावशुद्धिधारक संत ही धर्म के स्तम्भ हैं, वे मोक्ष के पथिक हैं.... वे प्रशंसनीय हैं, वे आदरणीय हैं। यहाँ कुन्दकुन्दाचार्य समान आचार्य भी कहते हैं कि—उनके प्रति हमारा त्रिविध नमस्कार हो।

जिसप्रकार उत्कृष्ट मुनि को धन्य कहा, उसीप्रकार सम्यग्दर्शनरूपी भावशुद्धि को धारण करनेवाले सम्यग्दृष्टि आराधक भी धन्य हैं, वे मोक्ष के पथ पर आरूढ़ हैं। धर्मात्मा की भावशुद्धि देखकर उनके प्रति धर्मात्मा को प्रमोद आता है। धर्म के जिज्ञासु को धर्मात्मा के प्रति प्रमोद आता है; भक्ति आती है। कुन्दकुन्दाचार्य समान आचार्य भी भक्ति और प्रमोद से कहते हैं कि—अहा,

रत्नत्रय से शुद्ध ऐसे मुनिवरों का अवतार धन्य है... धन्य है, उन्हें नमस्कार हो। इसप्रकार धन्यवाद सहित भक्ति से नमस्कार करते हैं। जिसे मोक्षमार्ग का अनुराग हो, उसे मोक्षमार्ग में अधिक जीवों को देखकर उनके प्रति अवश्य प्रमोद आता है और भक्ति से नमस्कार करता है।

धर्मी को देखकर धर्म का जिज्ञासु नमस्कार करता ही है। देखो, भावशुद्धि के वर्णन में साथ ही विनय भी बतलाते जाते हैं। जिसे भावशुद्धिवान धर्मात्मा के प्रति ऐसी विनय आदि न हों, उसे धर्म का प्रेम ही नहीं है।

आराधक जीव जगत के वैभव से मोहित नहीं होते।

अहा, जिसने जिनभावना भायी है, ऐसा धीर धर्मात्मा जगत की देवादि की ऋद्धि देखकर मोहित नहीं होता। चैतन्य के ज्ञान-आनंद की ऋद्धि के निकट धर्मात्मा को इन्द्रपद का वैभव भी तुच्छ तृणवत् भासित होता है। अहा, जिस चैतन्य की पवित्रता में केवलज्ञानरूप ऋद्धि प्रगट होती है, जिस चैतन्य के एक विकल्प के फल में इन्द्रपद प्राप्त होता है, उस चैतन्य के प्रति जिनकी बुद्धि लगी हुई है, ऐसे धीर पुरुष किसी विद्याधर की ऋद्धि से आकर्षित नहीं होते, जगत की क्षणिक ऋद्धियों की भावना उनके नहीं है, उन्हें तो चैतन्यस्वभाव की ही भवना है, जिनका सम्यक्त्व दृढ़ है, ऐसे धर्मात्मा को आत्मानुभव के परमार्थ-सुख के अतिरिक्त अन्य कोई भावना नहीं है। जिनभावना में रत ऐसा वह जीव सुखनिधान आत्मा के समक्ष जगत की बाह्य-ऋद्धि को तृण समान समझते हैं, इसलिये उसमें कहीं मोहित नहीं होते।

अहा, सम्यग्दृष्टि भी ऐसी ऋद्धि में मोहित नहीं होता, तो फिर मोक्ष में ही जिनकी दृष्टि लगी है और मोक्ष की साधना में जो तत्पर हैं, ऐसे उज्ज्वल मुनिवर जगत के अल्प तुच्छ भोगों में कैसे मोहित होंगे? मेघ रचना समान जगत के तुच्छ वैभव में वे मुनि मोहित नहीं होते। उनकी परिणति तो चैतन्य के मोक्ष वैभव की साधना में ही लगी है। वह तो मोक्षसुख को ही जानती है, उसे देखती है तथा उसी का चिंतवन करती है। अहा, मोक्ष के रसिक मुनिवरों को सांसारिक वैभव का रस उड़ गया है। जगत की किसी ऋद्धि को वे नहीं चाहते। सम्यक्त्वी भी जिसकी इच्छा नहीं करता तो मुनि कैसे करेंगे?

शीघ्र आत्महित साधने का उपदेश

अब कहते हैं कि अरे जीव! जीर्ण पर्णकुटी समान इस देह झोंपड़ी को जब तक रोगरूपी अग्नि भस्म न कर दे, यह वृद्धावस्था से न घिर जाये और इसका इन्द्रियबल क्षीण न हो जाये, तब

तक तू अपना आत्महित कर ले। अरे जीव! अल्पकालीन आयु है, अल्पशक्ति है, उसमें तू शीघ्र आत्महित का प्रयत्न कर।

आक्रमते यावन्न जरा रोगाग्निर्यावन्न दहित देहकुटीम्।
इन्द्रियबलं न विगलति तावत् त्वं कुरु आत्महितम्॥

वृद्धावस्था धर्म को रोकती है, ऐसा इसका अर्थ नहीं है, किंतु ऐसा उपदेश है कि अरे जीव! तू आत्महित का उद्यम कर। वर्तमान में देहादि की अनुकूलता हो तो उसमें मूर्च्छित न हो जा, क्योंकि यह शरीर सदा ज्यों का त्यों नहीं रहेगा। जिसप्रकार सूखे पत्तों की झोंपड़ी अग्नि की छोटी सी चिनगारी से सुलग जाती है, उसीप्रकार यह शरीररूपी कुटिया भी वृद्धावस्थारूपी अग्नि द्वारा क्षणभर में भस्म हो जायेगी। इसलिये वृद्धावस्था आने से पूर्व तू विषयभोगों में तथा शरीर में मूर्च्छा छोड़कर चैतन्य का हित साधने का यह अवसर है, इसलिये पहले से ही चैतन्य के हित को साधने का उद्यम करना। अहा, जिसने निजस्वरूप का ज्ञान-ध्यान-अनुभव का अभ्यास किया होगा, उसे तो वृद्धावस्था में भी उसकी उग्रता होगी; परंतु पहले जिसने आत्मा की परवाह नहीं की और शरीर में ही मूर्च्छित हो रहा है, वह तो वृद्धावस्था आने पर घिर जायेगा। इसलिये आचार्यदेव अति करुणा से कहते हैं कि हे भाई! तू पहले से सावधान होकर आत्मा का हित कर लेना। वृद्धावस्था और रोग आने से पूर्व अपना आत्महित साधन कर लेना। वृद्धावस्था में आँखों से दिखता नहीं है, कानों से सुनाई नहीं देता, हाथ-पैर काम नहीं करते और शरीर में अनेकों रोग हो जाते हैं, उससे पूर्व अपने चैतन्य धर्म को साध लेना चाहिये।

संत परोसते हैं
परमात्मा का प्रसाद

भाई, संत तुझे परमात्मा का दिया हुआ यह तत्त्व प्रसाद रूप में दे रहे हैं। वे समस्त लोक को आमंत्रण देते हैं कि अरे जगत् के जीवो! तुम मग्न होओ! यह परमातमा का प्रसाद है, इससे स्वाद का अनुभव करो! जीव चैतन्य को भूलकर जगत को संतुष्ट करने में रुका है... लेकिन उसमें कहीं कल्याण नहीं होगा... इसलिये अरे जीव! तू स्वयं अंतरोन्मुख होकर स्वानुभव से संतुष्ट हो! संत तुझे परमात्मा का यह प्रसाद दे रहे हैं, इसलिये तू संतुष्ट हो... हर्षित हो। तू संतुष्ट हो जावे तो सब संतुष्ट ही हैं। दूसरे कोई संतुष्ट हों या न हों—वे अपने में हैं; तू अपने आत्मा को सम्यक् श्रद्धा-ज्ञान

से प्रसन्न कर ले। तेरा आत्मा प्रसन्न और संतुष्ट हो गया, वहाँ जगत् के साथ तुझे क्या संबंध है ? प्रत्येक जीव स्वतंत्र है.... इसलिये दूसरे को प्रसन्न करने की अपेक्षा तू अपने आत्मा को प्रसन्न कर, तीन लोक का नाथ यदि प्रसन्न हो गया तो वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र एवं परम आनन्ददाता है। अरे जीवो ! एक बार तो ऐसा अनुभव करके आत्मा को प्रसन्न करो ! आत्मज्ञ संतों की उपासना द्वारा आत्मा को प्रसन्न करने से अतीन्द्रिय आनन्दरूप परमात्मा का प्रसाद प्राप्त होता है।

[-समयसार गाथा ३८ के प्रवचन से]

क्यों कर्ता बनते जाते हो ?

स्वतः परिणमती वस्तु के, क्यों कर्ता बनते जाते हो ?
कुछ समझ नहीं आती तुमको निःसत्व बने ही जाते हो॥

अरे ! कौन निकम्मा है जग में जो पर का करने जाता हो।
सब अपने अंदर रमते हैं तब किस विध करण रचाते हो॥

वस्तू का मालिक वस्तू है, जो मालिक है सो कर्ता है।
फिर मालिक का मालिक बनकर क्यों नीति न्याय गमाते हो॥

जो है सो स्वयं परिणमता है वह नहीं किसी से टलता है।
यह माने विन कल्याण नहीं, कोई कैसे ही कुछ करता हो॥

विश्ववंद्य धर्मसाम्राज्यनायक आदि तीर्थंकर

भगवान श्री ऋषभदेव

(गतांक नं० २४१ से चालू)

[सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्ररूपी दैदीप्यमान रत्नों से अलंकृत भगवान ऋषभदेव जिन-दीक्षा धारण करके वन में स्थित हुए थे एवं छः मास के उपवास की प्रतिज्ञापूर्वक ज्ञान-ध्यानरूपी तप में आरूढ़ थे। उसी समय जो चार हजार राजा केवल द्रव्य से साधु बने थे, वे भ्रष्ट होने लगे थे....

अब आगे क्या होता है? यह जानने के लिये श्री जिनसेनाचार्यकृत महापुराण पर आधारित यह लेखमाला चालू है।]

दीक्षा के अनंतर ही उन्हें (भगवान ऋषभदेव को) मनःपर्ययज्ञान प्राप्त हो गया था, इसलिये मति, श्रुति, अवधि और मनःपर्यय - इन चार ज्ञानों के धारक श्री आदिनाथ प्रभु उस भवन से सुशोभित होते थे, जिसमें अनेकों रत्न-दीप आलोकित हों। धीरवीर, परमसंतोषी प्रभु अनाहारी रहते हुए भी निजानन्दी चैतन्यपद में स्थित थे, मानों आत्मस्वरूपी आहार लेते थे। किंतु कच्छ-महाकच्छादि के नरेश क्षुधा-तृषा से आकुलित धैर्य से चलित होने लगे और आपस में बातचीत करने लगे कि भगवान स्वयं भोजनादि करके और हमें भी कराके यदि ध्यानस्थ होते, तो ठीक रहता, किंतु इस प्रकार बिल्कुल उपवास करते हुए तो हमें दुःखी कर रहे हैं। अतः उक्त प्रकार से व्याकुल होते हुए वे साधु शनैः शनैः वन के ही कंदमूल फलादि खाकर अपने प्राण बचाने लगे। उनका अनुमान था कि यदि हम वन छोड़ नगर में गये, तो भरतेश द्वारा दंडित होंगे।

अतः वे क्रमशः अधिकाधिक स्वेच्छाचार से प्रवर्तते हुए अति भ्रष्ट होने लगे। कभी-कभी परीषहों से पीड़ित हो वे फलादि प्राप्ति के लिये वन-खंडों में विचरने लगते, तो कभी-कभी प्यास से पीड़ित हो, तालाबों पर पहुँचने लगे। उन्हें इसप्रकार हीन-आचरण होते देख वन-देवताओं ने रोका और डाँटकर कहा कि, **हे अज्ञानियों! यह निर्ग्रंथ दिगम्बर वेष सर्वश्रेष्ठ अरिहंतादि के द्वारा धारण करने योग्य है, जिसे तुम दीनता का स्थान मत बनाओ।** तुम्हें अपने हाथों से वनफलादि नहीं तोड़ने चाहिये तथा तालाबादि से भी इस तरह अप्रासुक जल नहीं लेना चाहिये। यह सुनकर वे

साधु दिगम्बर वेष में भ्रष्ट आचरण करने में भयभीत हुए और अन्य प्रकार के वेष धारण करके स्वेच्छाचारी होने लगे। भगवान ऋषभदेव का पौत्र मारीचकुमार भी जो इसीप्रकार संन्यासी हो गया था, मिथ्या उपदेश से उसने मिथ्यात्व की वृद्धि की। इसप्रकार ये सभी स्पष्टतया भ्रष्ट हुए किंतु प्रभु मेरु-समान अकंप स्थित रहे और 'स्वरूप विश्रांत निस्तरंग चैतन्य में प्रतापवंतरूपी तप से इच्छानिरोध कर परमानंद का अनुभव करते रहे। [संयोग दृष्टि-निमित्ताधीन दृष्टिवाले उन्हें दु:खी मानते हैं किंतु दु:खी नहीं थे, आत्मा से उत्पन्न सुख से सुखी ही थे।]

बाह्य और अंतरंग १२ प्रकार के तपों में से भगवान श्री ऋषभदेव ध्यान में ही अधिक तत्पर रहते थे। आत्मभान सहित विकल्प काल में २८ मूलगुणों को पालते थे। यद्यपि वे किंचित् भी आहार नहीं लेते थे, किंतु उन्हें किसी भी प्रकार का परिश्रम भी नहीं होता था एवं वे पूर्ववत् ही दैदीप्यमान दिखते थे। भगवान के ध्यान प्रताप से इन्द्रों के आसन भी डोलते थे। इसप्रकार धैर्य से स्थित मुनिराज ऋषभेदव का वह लम्बा समय भी स्वानुभवानंद में लीनता होने से क्षणभर के समान व्यतीत हो गयाथा। इसी बीच एक घटना घटी—कच्छ-महाकच्छ के महाराज नमि और विनमि प्रभु के पास आये और राज्य-प्राप्ति हेतु प्रार्थना की। तब भगवान के ध्यान में विघ्न समझकर अवधिज्ञान से सब जानते हुए धरणेन्द्र वहाँ आये। उन्होंने सर्वप्रथम प्रभु की प्रदक्षिणा की, उन्हें प्रणाम किया और स्तुति की। किंतु जिसप्रकार यज्ञ करनेवाला अग्नि में आहुति करता है, उसीप्रकार मुनिराज श्री ऋषभदेव भी महाध्यानरूपी अग्नि में कर्मों की आहुति दे रहे थे। अत: तदनंतर धरणेन्द्र अपना रूप बदलकर दोनों कुमारों को समझाने लगे कि भगवान जो भोगों से निस्पृह हैं उनसे तुम भोगों की इच्छा क्यों करते हो ? तुम्हारी यह इच्छा शिला से कमल उत्पन्न करने के समान है। प्रारम्भ में मनोहर दिखनेवाले भोगों के वशीभूत पुरुष चाहे जितना बड़ा होने पर भी याचना रूपी दोष से शीघ्र ही तृणवत् लघु हो जाता है। तुम दोनों भोगों के इच्छुक हो; अत: भरत के पास जाओ। किंतु इतने पर उन दोनों कुमारों ने ऋषभदेव की श्रेष्ठ-भक्ति नहीं छोड़ी, जिससे प्रसन्न होकर अपना दिव्यरूप प्रकट करते हुए धरणेन्द्र ने कहा कि उठो ! आज मैं तुम्हें भोग-सामग्री दूँगा। तब दोनों राजकुमारों को विमान बैठाकर, आकाशमार्ग पार करते हुए शीघ्र ही विजयार्ध पर्वत पर पहुँच गया। वह पर्वत पृथ्वी-तल से १० योजन ऊँचा तथा ३० योजन चौड़ा था, और उससे भी १० योजन ऊपर जाकर अग्रभाग में केवल १० योजन चौड़ा रह गया था।

इस पर्वत की दोनों श्रेणियों में रहनेवाले विद्याधर ऐसे मालूम होते हैं मानों स्वर्ग से आकर

देवलोग ही यहाँ निवास करने लगे हों। कर्मभूमि में वर्षा, शीत-गर्मी आदि ऋतुओं का परिवर्तन तथा असि, मसि, कृषि आदि षटकर्मरूप जितने नियोग होते हैं, वे सब यहाँ पूर्णरूप से होते हैं, किंतु इतनी विशेषता है कि ये महाविद्यायें—यहाँ के लोगों को इनकी इच्छानुसार फल दिया करती हैं। यह विजयार्ध पर्वत उत्तर-दक्षिण दिशा में ऐसे ऐसे श्रेष्ठ नगरों को धारण कर रहा है, कि बड़े-बड़े प्राचीन कवि भी अपने वचनों से जिनकी स्तुति नहीं कर सकते थे। जिसप्रकार वृषभदेव, मनुष्य-देव विद्याधर और चारण ऋद्धिधारी मुनियों के द्वारा सेवनीय हैं, उसीप्रकार उस विजयार्ध पर्वत पर वे सभी विहार करते हैं।

धरणेन्द्र के साथ-साथ नीचे उतरकर उन्होंने अतिशय श्रेष्ठ और उन्नत ध्वजाओं से सुशोभित रथनपुर चक्रवाल नामक नगर में प्रवेश किया। धरणेन्द्र ने दोनों को वहाँ सिंहासन पर बैठाकर राज्याभिषेक किया और नगरजनों से कहा कि जिसप्रकार इन्द्र स्वर्ग का अधिपति है, उसीप्रकार यह नमि अब दक्षिण श्रेणी के तथा विनमि उत्तर श्रेणी के अधिपति रहेंगे। इसप्रकार राज्य तथा दो विद्यायें प्रदान कर धरणेन्द्र अपने स्थान चला गया। तत्पश्चात् श्री गौतमस्वामी श्रेणिक राजा से कहते हैं कि हे राजन्! यथार्थ पुण्य के कारण ही नमि और विनमित को विद्याधर राजा का इन्द्र पद मिला।

अचिंत्य महिमाधारक ऐसे जगत्गुरु भगवान ऋषभदेव को जब योग धारण किये छः मास पूरे हो गये, तब यतियों की निर्दोष आहार लेने की विधि बताने के लिये उनके मन में इच्छा हुई। संयमरूपी यात्रा की सिद्धि हेतु शरीर की स्थिति चाहनेवाले मुनियों को रसों में आसक्त न होकर निर्दोष आहार ग्रहण करना चाहिये। ऐसा निश्चयकर ऋषभदेव ने ईर्या समिति से युक्त होकर अनेक नगरों ग्रामों में बिहार किया। जहाँ-जहाँ वे जाते, वहाँ-वहाँ लोग प्रसन्न होकर उन्हें प्रणाम करते। कितने ही लोग बहुमूल्य रत्न लाकर, कितने विविध आभूषणादि, सवारियां लाकर, और कितने ही अति रूपवंत नवयौवना कन्याओं को लाकर प्रभु के समक्ष प्रस्तुत करके उन्हें स्वीकार करने की प्रार्थना करते थे।

चर्या-आहार-विधि नहीं जाननेवाले अनेकों अज्ञानी भगवान को खाद्य, स्वाद्य, भोज्य और पेय-पदार्थ दे रहे थे, किंतु उन्हें अनुचित मानते हुए प्रभु चुपचाप आगे बढ़ते रहते थे। इसप्रकार संसार को चकित करनेवाली गूढ़-चर्या से उत्कृष्ट चर्या धारण करनेवाले भगवान के ६ मास और व्यतीत हो गये। अर्थात् कुल एक वर्ष पूर्ण होने पर वे कुरुजंगल देश के आभूषणों से सुशोभित

हस्तिनापुर नगर में पधारे, जिसके रक्षक-राजा सोमप्रभ थे। उनका एक छोटा भाई श्रेयांसकुमार बुद्धि, रूप, गुण और कला में श्रेष्ठ था और पूर्व में अहमिन्द्र था। भगवान के इस नगर में आगमन के समय श्रेयांसकुमार ने रात्रि के पिछले प्रहर में निम्न स्वप्न देखे।

(१) ऊँचा सुमेरु पर्वत (२) सुशोभित कल्पवृक्ष (३) सिंह (४) वृषभ (५) सूर्य और चंद्रमा (६) समुद्र (७) अष्टमंगल धारती देवी-मूर्ति।

इसप्रकार भगवान के चरण-कमलों का दर्शन ही जिनका मुख्य फल है, ऐसे ७ स्पप्न देखे, जिनका फल कल्याणकारी है, ऐसा पुरोहित ने बताया। जिसके वचनों से प्रसन्न हो दोनों भाई भगवान की कथा कहते हुए बैठे। तभी योगिराज भगवान श्री ऋषभदेव हस्तिनापुर में प्रविष्ठ हुए। भगवान के दर्शनों की इच्छा से अनेक नागरिक बाहर आये और परस्पर कहने लगे कि आज हमारे आंगन में साक्षात् परमात्मा ही पधारे हैं, जिनके दर्शनों से नेत्र सफल होते हैं, नाम सुनने से कान सफल होते हैं और स्मरण करने से हृदय शुद्ध होता है, यह बड़ा अचरज है कि ये प्रभु त्रिलोकपति होकर भी सर्व परिग्रह त्याग इस रूप में अकेले ही विहार करते हैं।

जब नगर में यह सब हो रहा था, तब भगवान संवेग और वैराग्य-सिद्धि हेतु संसार और शरीर के स्वभाव का कमर बांधकर चिंतवन करते हुए प्राणी मात्र पर दया और मैत्री, गुणादिक जीवों पर प्रमोद, दु:खी जीवों पर करुणा, और अविनयी जीवों पर माध्यस्थ भावों से विहार करते थे। साथ ही चार हाथ प्रमाण मार्ग देखकर मध्यस्थ गति से राग-द्वेष रहित होकर धनी-निर्धन सभी के घर आहार-हेतु जाते थे, इसप्रकार वे विहार करते हुए राजा सोमप्रभ और श्रेयांसकुमार के राज्य-भवन के समीप आये।

जहाँ सिद्धार्थ नामक द्वारपाल ने शीघ्र ही अपने लघुभ्राता श्रेयांसकुमार के साथ बैठे राजा सोमप्रभ से प्रभु के पधारने के समाचार कहे, जिन्हें सुनते ही राजा और राजकुमार श्रेयांस, अंत:पुर, सेनापति और मंत्रियों के साथ शीघ्र ही उठकर राजमहल के प्रांगण तक आकर दोनों विनम्रभूत होकर भक्तिपूर्वक प्रभु चरणों में नमन किया। उन्होंने साथ ही भगवान के चरण कमल धोकर अर्घ चढ़ाया, और प्रदक्षिणा दी। तब वे दोनों इतने संतुष्ट हुए, मानो उनके घर निधि ही आई हो। वे दोनों हर्ष-विभोर थे, और भक्तिभाव से नतमस्तक हो रहे थे, अत: ऐसे सुशोभित होते थे, मानो विनय और शांति की मूर्ति ही हो—सौधर्म और ईशान इन्द्र ही हो।

इसी समय भगवान का रूप देखकर श्रेयांसकुमार को जातिस्मरण हो गया, जिससे उसने

अपनी पूर्वपर्याय संबंधी संस्कारों से भगवान को आहार देने की बुद्धि करी। उसे श्रीमती और वज्रजंघ आदि का वह समस्त वृत्तांत स्मरण हुआ तथा उस भव में उन्होंने जो चारण-ऋद्धिधारी दो मुनियों को आहार दिया था, यह भी याद आया। (१) मुनिराज को पड़गाहना (२) उन्नत स्थान पर विराजमान करना (३) चरण-शुद्धि करना (४) पूजन करना (५) नमन करना (६) मन शुद्धि (७) वचन शुद्धि (८) और काय-शुद्धि आहार की उद्देशिक-आधा:कर्मी आदि दोषों से रहित, विशुद्ध रखना। इस दान-कर्ता की यह नवधाभक्ति कहलाती है।

ये भगवान अतिशय इष्ट पात्र हैं, ऐसा विचारकर श्रद्धादि सातों गुणों सहित परम हर्षित आनंदित होकर भगवान को प्रासुक आहार दिया। साधारण लोग जिसे धारण नहीं कर सके और नव-जात शिशु-समान निर्विकार तथा उपद्रव रहित हैं, ऐसे नग्न दिगम्बर रूप के धारक तथा खड़े-खड़े हाथों में ही आहार लेनेवाले ऐसे भगवान ऋषभदेव को श्रेयांसकुमार ने राजा सोमप्रभ और रानी लक्ष्मीमति के साथ सादर ईख (गन्ना) के रस (प्रासुक) का आहार दिया।

उस समय 'अहो... धन्य... धन्य यह दान, धन्य यह पात्र तथा धन्य यह दानदाता' के शब्दघोष से समस्त आकाशरूपी आँगन गूँज गया और पुष्प तथा रत्न-वृष्टि होने लगी, नगाड़े आदि बज उठे, मंदमंद सुगंधित समीर बहने लगा। उन दोनों भाईयों ने भी अपने आप को बहुत ही कृतकृत्य माना, क्योंकि स्वयं कृतकृत्य हो चुके ऐसे भगवान श्री ऋषभदेव ने उनके घर-आँगन को पवित्र किया था। उस दान के अनुमोदक और भी अनेकों लोगों ने परम पुण्य लाभ लिया।

अनुमोदना से पुण्य-प्राप्ति कैसे होती है? उसका समाधान यह है कि पुण्य-पाप का बंध होने में केवल जीव के परिणाम ही कारण हैं, बाह्य कारण तो केवल निमित्तमात्र हैं, अत: शुभकार्य की अनुमोदना कर्ताओं के शुभ-परिणाम होते हैं, इसलिये उन्हें भी शुभ-फल की प्राप्ति अवश्य होती है।

इसप्रकार महामतिवान योगिराज भगवान ऋषभदेव ने शरीर की स्थिति हेतु आहार लेकर वन-प्रस्थान किया। राजा सोमप्रभ और श्रेयांस कुछ दूर तक भगवान के साथ जाकर लौट आये। उस समय अहो कल्याण! ऐसा कल्याण! और उसप्रकार का कल्याण! इस तरह समस्त संसार राजकुमार श्रेयांस के यश से भर गया, सो उचित ही है। उत्तमदान, यशदाता होता ही है। तभी से संसार में दान-पद्धति प्रचलित हुई और दानविधि भी सबसे पहले राजकुमार श्रेयांस ने ही जानी। इसलिये देवों ने भी श्री श्रेयांस की सादर-पूजा की और भरत-चक्रवर्ती आदि ने भी उन्हें धन्य और पूज्य माना था।

क्रमश:

ध्यान

मुमुक्षु को ध्यान द्वारा आत्मशुद्धि होती है और वह ध्यान उसको मति-श्रुतज्ञान द्वारा होता है।

मति-श्रुतज्ञान परोक्ष है या प्रत्यक्ष ?

बाह्य पदार्थों को जानने में मति-श्रुतज्ञान परोक्ष हैं और अंतर्मुख स्वसंवेदन में वे प्रत्यक्ष हैं; उनमें इन्द्रियों का अवलंबन छूट गया है।

ज्ञानपर्याय अंतर्मुख होकर एकाग्र हुई, वहाँ उपयोग की स्वद्रव्य में प्रवृत्ति हुई और परद्रव्य प्रवृत्तिरूप मोह छूट गया। ऐसा स्वद्रव्य में एकाग्र उपयोग, सो ध्यान है। ऐसा ध्यान शुद्ध है, अनाकुल है, उसमें अन्य द्रव्य के साथ सम्पर्क का अभाव होने से अशुद्धता का अभाव है। ऐसी जो ध्यान परिणति है, वह आत्मा से अनन्य (एकमेक, अभेद) होने के कारण आत्मा से पृथक् नहीं है, उसमें अकेले स्वद्रव्य का ही संचेतन होने से शुद्धता है। ऐसा ध्यान चौथे गुणस्थान में भी होता है। अंतर के मनन-विचार बिना इस बात का पता नहीं चलता। अरे जीवो! अकेले आत्मा को देखो... उसका अवलोकन करो... उपयोग को अंतरोन्मुख करके स्वद्रव्य को लक्ष में लो... उपयोग द्वारा आत्मा का अवलोकन होने से ज्ञाता-ज्ञान-ज्ञेय तीनों का एकाकारत्व हुआ, वही ध्यान है। उस ध्यान के समय पर्याय है तो अवश्य, परंतु वह आत्मा के साथ एकाकार अभेद परिणमित हुई है। अंतर की प्रतीति में यह बात लेकर इसका प्रयोग करे तो ध्यान हो। केवलज्ञान ऐसे ध्यान से प्रगट होता है, मुनिदशा भी ऐसे ध्यान से प्रगट होती है और सम्यग्दर्शन भी ऐसे ध्यान से ही प्रगट होता है। ऐसा ध्यान ही हमारी सच्ची सम्पत्ति है। [प्रवचनसार प्रवचन से]

वस्तु स्वभाव

(प्रत्येक वस्तु की स्वतंत्र व्यवस्था)

भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्यकृत समयसारजी शास्त्र में गाथा ३५५ की टीका में कलश नं० २१३ में त्रैकालिक अबाधित नियम कहा है कि—वस्तु चैकमिह नान्यवस्तुनो.....

''अर्थ—इस लोक में एक वस्तु अन्य वस्तु की नहीं है, इसलिये वास्तव में वस्तु वस्तु ही है—यह निश्चय है। ऐसा होने से कोई अन्य वस्तु अन्य वस्तु के बाहर लौटती हुई भी उसका क्या कर सकती है ?

पंडित जयचन्दजी कृत भावार्थ—वस्तु का स्वभाव तो ऐसा है कि एक वस्तु अन्य वस्तु को नहीं बदल सकती। यदि ऐसा न हो तो वस्तु का वस्तुत्व ही न रहे।

इससे यह समझना चाहिये कि—व्यवहार से परद्रव्यों का और आत्मा का ज्ञेय ज्ञायक संबंध होने पर भी परद्रव्य, ज्ञायक का कुछ भी नहीं कर सकते और ज्ञायक, परद्रव्य का कुछ भी नहीं कर सकता ॥२१३॥''

आचार्यदेव अब, इसी अर्थ को दृढ़ करनेवाला तीसरा काव्य कहते हैं—

''यत्तु वस्तु कुरुतेऽन्यवस्तुनः किंचनापि परिणामिनः स्वयम्।
व्यावहारिकदृशैव तन्मतं नान्यदस्ति किमपीह निश्चयात्॥२१४॥

अर्थ—एक वस्तु स्वयं परिणमित होती हुई अन्य वस्तु का कुछ भी कर सकती है—ऐसा व्यवहार दृष्टि से ही माना जाता है। निश्चय से इस लोक में अन्य वस्तु का अन्य वस्तु के साथ कोई संबंध नहीं है।

भावार्थ—(श्री पंडित जयचंदजी) एक द्रव्य के परिणमन में अन्य द्रव्य को निमित्त देखकर यह कहना कि 'अन्य द्रव्य ने यह किया', सो यह व्यवहारनय की दृष्टि से ही है; निश्चय से तो उस द्रव्य में अन्य द्रव्य ने कुछ भी नहीं किया है। वस्तु के पर्याय स्वभाव के कारण वस्तु का अपना ही एक अवस्था से दूसरी अवस्थारूप परिणमन होता है; उसमें अन्य वस्तु अपना कुछ भी नहीं मिला सकती।'' समयसार गाथा ८४ की टीका में आचार्यदेव ने कहा है कि—

''जीव पुद्गल कर्म को करता है और भोगता है, ऐसा अज्ञानियों का अनादि संसार से

प्रसिद्ध व्यवहार है' भावार्थ—(पंडित जयचंदजी—)पुद्गल कर्म को परमार्थ से पुद्गलद्रव्य ही करता है; जीव तो पुद्गल कर्म की उत्पत्ति के अनुकूल अपने रागादिक परिणामों को करता है। और पुद्गलद्रव्य ही पुद्गल कर्म को भोगता है; तथा जीव तो पुद्गल कर्म के निमित्त से होनेवाले अपने रागादिक परिणामों को भोगता है। परंतु जीव और पुद्गल का ऐसा निमित्त-नैमित्तिक भाव देखकर अज्ञानी को ऐसा भ्रम होता है कि जीव, पुद्गल कर्म को करता है-भोगता है। अनादि अपना अज्ञान के कारण ऐसा (भ्रमरूप) अनादिकाल से प्रसिद्ध व्यवहार है।''

''परमार्थ से जीव-पुद्गल की प्रवृत्ति भिन्न होने पर भी, जब तक भेदज्ञान न हो, तब तक बाहर से उनकी प्रवृत्ति एक सी दिखाई देती है। अज्ञानी को जीव-पुद्गल का भेदज्ञान नहीं होता; इसलिये वह ऊपरी दृष्टि से जैसा दिखाई देता है, वैसा मान लेता है; इसलिये वह यह मानता है कि जीव, पुद्गल कर्म को करता है, भोगता है। श्रीगुरु भेदज्ञान कराकर, परमार्थ जीव का स्वरूप बताकर **अज्ञानी के इस प्रतिभास को व्यवहार कहते हैं।**''

''अब इस व्यवहार को दूषण देते हैं, गाथा ८५

यदि आत्मा इस पुद्गल कर्म को करे और उसी को भोगे तो वह आत्मा दो क्रियाओं से अभिन्न ठहरे, ऐसा प्रसंग आता है—जो कि जिनदेव को सम्मत नहीं है। भावार्थ—दो द्रव्यों की क्रिया भिन्न ही है। जड़ की क्रिया को चेतन नहीं करता और चेतन की क्रिया को जड़ नहीं करता। जो पुरुष एक द्रव्य को दो क्रियायें करता हुआ मानता है, वह मिथ्यादृष्टिता के कारण सर्वज्ञ के मत से बाहर है, क्योंकि दो द्रव्य की क्रियाओं को एक द्रव्य करता है, ऐसा मानना जिनेन्द्र भगवान का मत नहीं है।''

स्वतंत्र वस्तु स्वभाव की घोषणा

ब्रह्मचर्य

(गतांक नं० २३९ से चालू)

[आठ कुमारिका बहिनों ने ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार किया था,
उस अवसर पर पूज्य स्वामीजी का प्रवचन]

अज्ञानी ही विषयों को सुख का साधन मानकर व्यर्थ प्रयत्न करता है

अहो! खबर ही नहीं पड़ती कि यह संसारी प्राणी व्यवहारकुशल है या विदग्ध—पागल है? सचमुच विषय वासना ने उसकी विवेक बुद्धि को भ्रष्ट कर दिया है, इसलिये जब वह सुख के कारणों की गिनती करने बैठता है, तब उसमें सर्वप्रथम स्त्री को गिनता है! वह मूर्ख पुरुष अपना आत्मा ही सुख का भंडार है, उसे नहीं मानता और पर में सुख के लिये व्यर्थ की दौड़धूप करता है। और वास्तव में जो अपने लिये अहितकर है, उसे भी हितकारी तथा सुख का साधन समझकर पुनः पुनः उसमें राग करता है।

ज्ञानी स्वविषय में लीन होकर सुख का अनुभव करता है,
अज्ञानी परविषय में लीन होकर दुःखी होता है।

मुमुक्षु जीव को स्वविषय की रुचि है; इसलिये वह अपने आत्मा में तन्मय होता है और कामांध जीव को स्त्री-आदि पर विषयों की रुचि है; इसलिये वह उसमें तन्मय हो जाता है। इस संबंध में तुलना करते हुए ग्रंथकार लिखते हैं कि—

(१) जिसप्रकार कोई मुमुक्षु पुरुष गुरु के निकट अध्यात्मतत्त्व का उपदेश सुनकर अपने स्वरूप में श्रद्धा करने लगता है, उसीप्रकार कामांध पुरुष अपने अभीष्ट विषय में (-स्त्री आदि में) विश्वास करने लगता है।

(२) श्रद्धा प्रगट होने के पश्चात् जिसप्रकार वह मुमुक्षु पुरुष गुरु के निमित्त से आत्मस्वरूप का ही प्रेम तथा परिचय करता रहता है, उसीप्रकार विषयांध जीव अपने इष्ट विषय का प्रेम-परिचय करता है।

(३) तत्पश्चात् जिसप्रकार वह भव्य मुमुक्षु जीव साधु होकर अपने आत्मस्वरूप में भलीभाँति रमण करने लगता है और अंत में उसमें लीन-एकाकार हो जाता है, उसीप्रकार विषयांध

कामी पुरुष विषयों में लीन हो जाता है।

(४) साधुओं को तो अपने शुद्धात्मस्वरूप में समरस-एकाकार होने से साक्षात् आत्मिक सुख का अनुभव होता है; और कामांध पुरुष विषय में लीन होकर मात्र मिथ्याकल्पना से अपने को सुखी मानता है।

इसप्रकार मुमुक्षु भव्य जीव तो आत्मा के स्वभाव का विश्वास, उसका प्रेम, उसका परिचय तथा उसमें लीनता करके आत्मिक सुख का अनुभव करते हुए अल्पकाल में मुक्ति प्राप्त करते हैं। और विषयों में सुख माननेवाला कामांध जीव विषयों में ही लीनता करके दु:ख भोगता हुआ अनंतानंत संसार में भटकता है।

***

इसलिये हे भव्य जीवो! श्रीगुरु के उपदेश से आत्मस्वरूप का विश्वास करके उसी में लीनता का प्रयत्न करो... विषयों में स्वप्न में भी सुख की कल्पना न करो। योगीजन आत्मस्वरूप में लीनता के आनन्द का अनुभव करके सिद्धि प्राप्त करते हैं।

एकत्व स्वरूप में रहने की भावना

जिसप्रकार परमाणु में यदि एकगुण रूक्षता-चिकनाहट हो तो वह बँधता नहीं है; उसीप्रकार जिस संयमी का मन 'एक गुण' में ही अर्थात् सम्यग्दर्शनादि उत्कृष्ट गुणों में ही अर्थात् एकत्वस्वयप आत्मा में ही लगा है, वे बँधते नहीं हैं। परन्तु जिसप्रकार परमाणु एक गुण छोड़कर अधिक गुण रूक्षता-चिकनाहटरूप परिणमित हो तो वह बँधता है, उसीप्रकार संयमी जीव भी यदि अपने एकत्वरूप शुद्धात्मा को छोड़कर अन्य विषयों में प्रवृत्ति करे तो वह बँधता है। इसलिये मुमुक्षु स्त्री-शरीर आदि के संबंध से विरक्त होकर अपने एकाकी शुद्धात्मस्वरूप में ही रहना चाहता है। (सर्व परविषयों से विरक्त होकर अपने एकत्वस्वरूप में स्थित रहना, सो ब्रह्मचर्य है और एकत्व आत्मस्वरूप को छोड़कर पर विषयों में परिणति को घुमाना, सो अब्रह्मचर्य है।)

ब्रह्मचारी मुमुक्षु पर का संग दूर से ही छोड़ देता है।

जिसप्रकार मिसरीकंद की गंधमात्र से ही स्वादिष्ट और शुद्ध आटा भी नीरस और खराब हो जाता है, उसीप्रकार स्त्री सम्पर्क के विकल्पमात्र से संयमी पुरुष के आत्मानुभव का शुद्ध स्वाद-आनन्द तथा वीतरागता क्षणमात्र में बिगड़ जाता है। इसलिये संयमी पुरुषों को आत्मानुभव में लीन रहकर स्त्रियों का संसर्ग इसप्रकार दूर से ही छोड़ देना चाहिये कि उसकी गंध भी न आये। ऐसा

करने से ही उसका मोक्षरूपी प्रयोजन सिद्ध होता है।

तत्त्वज्ञान की जागृति वह ब्रह्मचर्य का मूल है।

यदि स्त्री के शरीर पर दृष्टि पड़ते ही, अन्य विकल्प उठने से पूर्व ही जिस मुमुक्षु आत्मा का तत्त्वज्ञान एकदम जागृत हो जाता है और अशुचिमय शरीर के वास्तविक स्वरूप को लक्ष में लेता है, तो कहना चाहिये कि उस मुमुक्षु आत्मा ने मोह के गले पर पाँव रख दिया है; लात मारकर चारित्रमोहकर्म का तिरस्कार कर दिया और विजय प्राप्त कर ली।

यहाँ कहा है कि—जिस जीव को शरीर और आत्मा के भेदज्ञानरूप तत्त्वज्ञान सदा जागृत है और प्रत्येक प्रसंग पर तत्त्वज्ञान से ही काम लेकर वस्तुस्वरूप का विचार करता है, उस जीव को कभी स्त्री के शरीरादि में सुखबुद्धि नहीं होती तथा वही यथार्थ ब्रह्मचर्य का पालन कर सकता है और मोह को जीतकर अपने इष्टपद की सिद्धि प्राप्त करता है। इसलिये ऐसा सिद्ध हुआ कि ब्रह्मचर्यादि का मूल कारण तत्त्वज्ञान ही है।

अपना आत्महित चाहनेवाले ब्रह्मचारी मुमुक्षुओं को कैसे पुरुषों की संगति करना चाहिये, वह यहाँ बतलाते हैं।

हे मुमुक्षु! इस ब्रह्मचर्य के संबंध में कल्याण और अच्छिन्नता प्राप्त करने की इच्छा से यदि तू आत्महित और ब्रह्मचर्य को पूर्ण करना चाहता है तो तुझे उन सद्गुरुओं—वृद्ध आचार्यों की सेवा (आराधना) करना चाहिये कि जो सदा धर्मनीति का आदर करनेवाले हैं, जो कुलीनता के कारण दृढ़ संयमी हैं, सत्य उपदेष्टा सद्गुरुओं के वचनों पर आरूढ़ता करने से अर्थात् उनके उपदेशानुसार चलने से जिनके मन में से कामदेव के संस्कार अस्त हो गये हैं, भव भ्रमण के दुःखों से जो अत्यंत भयभीत हैं अर्थात् संसार के प्रति वैराग्य-संवेग जिनके क्षण-क्षण बढ़ रहा है, जो दूसरे जीवों को हित का मार्ग दर्शानेवाले हैं, जिनका मोक्षरूपी महान उदय निकट कालवर्ती हो गया है अर्थात् जो अत्यंत निकट भव्य हैं—जो इसी भव में या अल्पभव में ही मोक्ष प्राप्त करनेवाले हैं तथा जिनके शुद्ध चिदानंदानुभव के फल की वृद्धि सदा बनी रहती है। ऐसे गुणों से युक्त वृद्धाचार्य आदि की निरंतर आराधना अपने ब्रह्मचर्य की सिद्धि के लिये मुमुक्षुओं को अवश्य करना चाहिये। कहा है कि:—

यः करोति गुरुभाषितं मुदा संयमे वसति वृद्धसंकुले।
मुंचते तरुण लोकसंगतिं ब्रह्मचर्यममलं स रक्षति॥

जो व्यक्ति प्रसन्नतापूर्वक गुरु उपदेशानुसार सदा वर्तता है और तरुण लोगों की संगति

छोड़कर वृद्धपुरुषों के बीच में सदा उनके निकट रहता है, वह व्यक्ति अपने ब्रह्मचर्य को निर्मल रखता है।

यहाँ एक यह बात विशेष ध्यान में रखना चाहिये कि—इस ब्रह्मचर्य प्रकरण में जिन्हें 'वृद्ध' कहा है, वह मात्र वय की प्रधानता से नहीं कहा, किंतु जिनमें श्रद्धा-ज्ञान-संयमादि गुण विशेषरूप से वृद्धिंगत हैं, उन्हें ही वृद्ध कहा है।

जिसप्रकार निर्मली औषधि का संबंध होते ही पानी का कादव शांत हो जाता है, उसीप्रकार जो ज्ञान-संयमादि गुणों में वृद्धिगत हैं, ऐसे वृद्ध पुरुषों की संगत से मलिनभाव एकदम प्रशांत हो जाते हैं। और जिसप्रकार पानी में पत्थर डालने से उसका मैल उठ आता है, उसीप्रकार विषयी पुरुषों के संसर्ग की भावना से मलिनभाव प्रगट होते हैं। इसलिये अपने ब्रह्मचर्य व्रत की निर्मलता बढ़ाने की इच्छावाले मुमुक्षु जीवों को सदा ज्ञानादि में वृद्ध पुरुषों की संगति करना चाहिये, कामी पुरुषों की संगति न करें।

जिसप्रकार चंद्रमा का पूर्ण उदय होने से समुद्र भी अत्यंत क्षोभित होकर उछलता है, उसीप्रकार नवीन युवावस्था में अनेक जीव क्षोभित हो जाते हैं। इसलिये ब्रह्मचारी मुमुक्षुओं को उस अवस्था में अत्यंत सावधान रहना योग्य है; युवावस्था का विश्वास करने योग्य नहीं है। जो ज्ञानादि में वृद्ध हों, ऐसे संतों की संगति निरंतर करना चाहिये।

युवावस्था को प्राप्त करके भी जो मनुष्य निर्विकार रहता है वह प्रशंसनीय है—ऐसा कहते हैं:—

(बसन्ततिलका)

दुर्गेपि यौवनवने विहरन् विवेक-
चिन्तामणिं स्फुटमहत्त्वमवाप्य धन्यः।
चिन्तानुरूपगुणसम्पदुरुप्रभावो
वृद्धो भवत्यपिलितोपि जगद्विनीत्या ॥९९॥

यद्यपि वह यौवनरूपी वन दुर्गम है, साधारण लोग अनेक प्रकार के विकार किये बिना उसका पार नहीं पाते, तथापि जो मनुष्य उस यौवन वन में विहार करता हुआ भी, जिसका महत्त्व प्रगट है—ऐसे भेदविज्ञानरूपी चिन्तामणि को प्राप्त करके अपनी भावनानुसार गुणसम्पत्ति के महान प्रभाव से संयुक्त हो जाते हैं और किंचित् भी विकृति को प्राप्त नहीं हैं, वे धन्य हैं। तथा ऐसे पुरुषों

का शरीर वृद्धावस्था से रहित होने पर भी गुणसम्पति में वे वृद्धिमान होने से उन्हें वृद्ध ही समझना चाहिये, क्योंकि वे भी जगत के जीवों को वृद्धों की भाँति शिक्षादिक दे सकते हैं। परंतु धन्य पुरुष विरले ही होते हैं।

यहाँ भेदविज्ञान की ही प्रधानता बतलाई है। युवावस्था में जो पुरुष भेदविज्ञान प्राप्त करके दर्शन-ज्ञानादि गुणों से शोभायमान हो जाता है, वह पुरुष धन्य है। भेदविज्ञान की महिमा और जगत्पूज्यता प्रगट है, वह चिन्तामणि समान है तथा उसी से मोक्ष की सिद्धि होती है। जो भव्य जीव यौवनावस्था में ही ऐसे भेदज्ञानरूपी विवेक द्वारा प्राप्त हुए गुणों के प्रभाव से अलंकृत हो जाता है, उसे वास्तव में युवा न मानकर वृद्ध ही मानना चाहिये। ऐसे विरले पुरुषों को धन्य है!

भेदविज्ञानरूपी विवेक, जिनाज्ञानुसार श्रद्धा-संयमरूपी बल और विनय सहित ज्ञान वैराग्य सम्पन्न की संगति से ही यौवनावस्था निर्विकार रह सकती है। (क्रमशः)

धार्मिक शिक्षण शिविर

जयपुर - श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल की ओर से पंडित चैनसुखदासजी की अध्यक्षता में श्रुत पंचमी महोत्सव मनाया गया, जिसमें पंडित भँवरलालजी न्यायतीर्थ, पंडित गुलाबचन्दजी, डॉ. ताराचंद्र बख्शी, मा० विद्याधरजी काला व पंडित चैनसुखदासजी के सारगर्भित भाषण हुये। तत्पश्चात् गोदिकों के चैत्यालय में श्री सेठ प्रकाशचंदजी काशलीवाल ने धार्मिक शिक्षण शिविर का उद्घाटन किया। जिसमें ७५ शिक्षार्थी सम्मिलित हुये, जिन्हें सेठ मीठालालजी सेठी ने कार्यक्रम समाप्त होने पर मिष्ठान्न वितरण किया। यहाँ शिविर एक मास तक चलेगा, जिसके लिये बाहर के अनेक विद्वानों को आमंत्रित किया गया है।

डा० ताराचंद्र बख्शी,
बख्शी भवन, न्यू कोलोनी, जयपुर।

सम्यग्ज्ञानी की वैराग्य भावना

यह जीव न, संयोग और संयोगीभाव = शुभाशुभ आस्रव वह स्थिर नहीं है, किंतु बिजली के समान चंचल ही है। मेरा आत्मा नित्य ज्ञानानंद का धारक है।

घर-परिवार स्वप्न समान अस्थायी है - आत्मा नित्य जागृत ज्ञातास्वरूप है।

स्नेह संध्या के रंग के समान है, आत्मा सदा अरागी अतीन्द्रिय ज्ञाता है।

शरीर तृण पर गिरे हुए जल बिन्दु समान है, आत्मा टंकोत्कीर्ण ज्ञानमूर्ति है।

भोग मेघ-धनुष्य के समान है, आत्मा नित्य परिणामी है।

संपत्ति बादल के समान है, मेरी आत्म संपत्ति अविनाशी ज्ञान आनन्द की अक्षय निधि है।

जवानी-जल रेखा के समान है, आत्मा अपनी अखंडित प्रताप संपदा से सदा अपना संपूर्ण सामर्थ्य सहित है, रहित नहीं है।

—ऐसा आत्मा ही शरणभूत नित्य, सुखदाता और कल्याणमूर्ति है। उससे विरुद्ध आस्रवों मिथ्यात्व, क्रोधादि कषाय, शुभाशुभभाव और सब प्रकार के मलिन भाव जो जीव के अपराध से नया-नया पैदा होता है, वह हेय है, अहितकारी है, ऐसा जानना चाहिये।

बीते काल अनंत जो कर्म शुभाशुभ भाव।
वही शुभाशुभ छेदतें उपजत मोक्ष स्वभाव॥

मैत्री, प्रमोद, कारुण्य और माध्यस्थ भावना, अनित्यादि बारह भावना, संवेग और वैराग्य के लिये क्रम से संसार और शरीर के स्वभाव को जानकर किसी को इष्ट मान, राग न करे, किसी को अनिष्ट मानकर द्वेष न करे, मात्र स्वसन्मुख ज्ञातारूप से जाननेवाला रहे, उसी का नाम धर्मी का सच्चा धर्म है।

अतीन्द्रिय ज्ञानमय चैतन्यस्वरूप के लक्षसहित अनित्य भावना;

विद्युत लक्ष्मी प्रभुता पतंग, आयुष्य वह तो जल के तरंग;
पुरंदरी चाप अनंग-रंग, राचत कहाँ, है क्षणिक प्रसंग॥

(श्री राजचंद्रजी)

क्या व्यवहार रत्नत्रय

सच्चा मोक्षमार्ग है ?

[श्री पंडित गेंदालालजी शास्त्री, बूँदी]

सम्यग्दर्शन ज्ञानव्रत-आतम के निज रूप।
प्रगटे जब पर्याय में-तब हो धर्म अनूप॥१॥

समयसार की चौथी गाथा में भगवान कुन्दकुन्द ने लिखा है कि—

सुद परिचिदाणुभूदा सव्वस्स हु काम भोग बंध कहा।
एयत्तस्सुवलम्भो, णवरि ण सुलहो विहत्तस्स॥४॥

अर्थात् सर्व संसारी जीवों को काम-भोग संबंधी बंधकथा तो अनंत बार सुनने में आ गई है, और अनुभव में भी आ गई है, इसलिये सुलभ है, लेकिन पर से भिन्न आत्मा का एकत्व होना न तो कभी सुना है, न परिचय में आया है और न अनुभव में आया है, इसलिये एकमात्र वही सुलभ नहीं है। इस गाथा में आचार्यदेव ने पंच परावर्तनों में परिभ्रमण करते हुए जीवों के लिये कहा है कि अनादिकाल से काम-भोग बंध की कथा तो अनंत बार सुनी, परिचय में ली तथा अनुभव भी किया और उसके शुभाशुभ फल से अनंत बार सातवें नर्क में तथा ग्रैवेयक में सुख-दुःखरूप फल को भोगकर भी अपने भवरहित ज्ञायक स्वभाव को प्राप्त नहीं कर सका है। इस गाथा से ध्वनित होता है कि जिस चैतन्य चमत्कार में से वास्तविक शुद्ध रत्नत्रय पर्यायरूप निश्चयधर्म इस जीव ने एक भी बार नहीं किया है। बल्कि कोरे व्यवहाराभास में ही मग्न रहा है। यों तो मिथ्यात्व और सम्यक्त्व ये दोनों अनादिकाल से चले आ रहे हैं और चलते ही रहेंगे, लेकिन जिन जीवों के आत्मा में से बंधरूप पुण्य की मिठास निकल गई है, वे ही पात्र जीव सच्चे वीतरागस्वरूप रत्नत्रय को पाकर मोक्ष अवस्था को प्राप्त करने में समर्थ हुए हैं।

पंडित टोडरमलजी सा० मोक्षमार्गप्रकाशक में लिखते हैं कि, 'अशुभभाव को बुरा जानकर भी शुभ (पुण्य) भावों को अज्ञानी जीवों ने संवर-निर्जरारूप मोक्षमार्ग मान रखा है, सो बंध के कारणों अबंधस्वयप मुक्ति कैसे प्राप्त हो सकती है ? हमारे बहुत से विद्वान लिखते हैं कि व्यवहार रत्नत्रय भी वास्तव में निश्चय रत्नत्रय के समान संवर-निर्जरारूप मोक्षमार्ग है' और इसके समर्थन में समयसारजी 'सुद्धोसुद्धादेशो' इत्यादि बारहवीं गाथा का प्रमाण देते हैं।

इस पर विचार करने के पहले आचार्यों ने मोक्ष और मोक्षमार्ग की क्या परिभाषा बतलाई है, उस पर संक्षिप्त प्रकाश डाला जाता है। आचार्य उमास्वामी महाराज ने तत्त्वार्थसूत्र में लिखा है कि 'बन्धहेत्वनिर्जराभ्याम् कृत्स्नकर्म विप्रमोक्षा मोक्ष॥' अध्याय १० सूत्र ३॥ अर्थात् बंध के हेतु मिथ्यादर्शन, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग इनका सर्वथा अभाव होने से तथा निर्जरा द्वारा द्रव्यभावरूप समस्त कर्मों का आत्यंतिक अभाव होने पर जो आत्मा की कारणपरमात्मा के अनुरूप कार्यपरमात्मारूप शुद्ध पर्याय प्रगट होती है, उसे मोक्ष कहते हैं। और जब तक कारणपरमात्मा के अनुरूप शुद्धपर्याय की अपूर्णता रहे, तब तक वह पर्याय मोक्षमार्ग कहलाती है। इससे सिद्ध होता है कि जो पर्याय कारणपरमात्मा के अनुरूप होगी, वही वास्तव में मोक्षमार्ग हो सकती है, इससे (कारणपरमात्मा के स्वरूप से) विपरीत भेदरूप तथा रागरूप पर्याय तथा स्वातिरिक्त भिन्न पदार्थ, ये सच्चे मोक्षमार्ग कभी नहीं हो सकते हैं। जो पर्याय त्रिकाली, ध्रुव, ज्ञायक, कारणपरमात्मा से अभेदरूप होने की योग्यता रखती है अर्थात् उस ध्रुव स्वभाव से तन्मयता धारण कर सकती है, वही पर्याय सच्चा मोक्षमार्ग है, वही अभिन्न साध्य-साधनभाव है और वही शुद्ध निश्चय-रत्नत्रयरूप मोक्षमार्ग है। इससे विपरीत जो भेद (राग) रूप व्यवहाररत्नत्रय पर्याय जिसे भिन्न साध्य साधनभाव भी कहते हैं, उपचार मोक्षमार्ग है। ऐसा ही प्रवचनसार में १९९वीं गाथा की टीका में श्री अमृतचंद्रस्वामी ने लिखा है कि—

'यतः सर्व एव सामान्य चरम शरीरास्तीर्थंकराः अचरम शरीरा मुमुक्षुवश्चामुनैव यथोदितेन शुद्धात्मतत्त्वप्रवृत्ति लक्षणेन विधिना प्रवृत्त मोक्षस्य मार्गमधिगम्य सिद्धा बभूवुः न पुनः अन्यथापि। ततोऽवधार्यते केवलमयमेक एव मोक्षस्य मार्गो न द्वितियः इति॥

अर्थात् सभी सामान्य चरम शरीर, तीर्थंकर और अचरम शरीरी मुमुक्षु इसी यथोक्त शुद्धात्म तत्त्व प्रवृत्ति लक्षण विधि से प्रवर्तमान मोक्षमार्ग को प्राप्त करके सिद्ध हुए, किन्तु ऐसा नहीं है कि किसी दूसरी विधि से (व्यवहार रत्नत्रय जो शुद्धात्म तत्त्व प्रवृत्ति लक्षण-निश्चय रत्नत्रय से भिन्न है, उसके द्वारा) भी सिद्ध हुए हों। इससे निश्चित होता है कि केवल एक ही मोक्ष का मार्ग है, दूसरा नहीं। ऐसा ही कथन पंडित टोडरमलजी सा० ने मोक्षमार्गप्रकाशक में किया है कि 'कहीं मोक्षमार्ग निश्चय और व्यवहार इस तरह दो नहीं हैं। जो शुद्धात्मतत्त्व प्रवृत्ति लक्षण निश्चय रत्नत्रय है, वह एक ही सच्चा मोक्षमार्ग और व्यवहाररत्नत्रय उस निश्चय का सहचर होने से उपचार से मोक्षमार्ग कहलाता है, इस तरह निरूपण दो प्रकार से है, मोक्षमार्ग एक निश्चय और दूसरा व्यवहार; इस

तरह दो नहीं हैं।' यदि दो मोक्षमार्ग वास्तव में हों तो कितने ही जीव केवल व्यवहार मोक्षमार्ग द्वारा ही मोक्ष चले जावें और कितने ही निश्चय मोक्षमार्ग से।

जैसे मोक्षमार्ग दो हैं तो उनके द्वारा प्राप्त मोक्ष भी दो भिन्न-भिन्न होना चाहिये। हमारे धर्मबंधु यहाँ तक लिखने का साहस करते हैं कि चौथे पाँचवें और छठे गुणस्थान तक केवल व्यवहार रत्नत्रयरूप मोक्षमार्ग ही होता है, निश्चय तो सातवें गुणस्थान से प्रारम्भ होता है, और इनसे भी और एक विद्वान तो दशवें गुणस्थान तक केवल व्यवहार मोक्षमार्ग ही बतलाते हैं, इसके आगे निश्चय होना कहते हैं, और इसके प्रमाण में समयसार की बारहवीं गाथा और उसकी टीका का कल्पित अर्थ करके अपने को धन्य मान रहे हैं। अब इनकी युक्ति पर जरा विचार किया जाता है।

प्राय: यह तो जैनधर्म का साधारण ज्ञान रखनेवाला भी जानता है कि प्रमाण के द्वारा गृहीत अर्थ के एकदेश को जाननेवाला नय है। जैसे प्रमाण सम्यग्ज्ञानरूप है, वैसे उस प्रमाण का अंश नय भी सम्यग्ज्ञानरूप ही है, वह मिथ्याज्ञानरूप कभी नहीं हो सकता। श्री समंतभद्र स्वामी ने देवागम में लिखा है कि 'निरपेक्षा नया मिथ्या, सापेक्षा वस्तुतेऽर्थकृत।' अर्थात् निरपेक्षनय मिथ्या होते हैं, सापेक्षनय वस्तु की सिद्धि कर सकते हैं। इससे सिद्ध होता है कि निश्चय-व्यवहार से निरपेक्ष मिथ्यारूप ही है। अब सोचिये, जो महानुभाव दसवें गुणस्थान तक केवल व्यवहार ही मानते हैं, निश्चय बिल्कुल नहीं, वे कहाँ तक आगम का विपर्यास कर रहे हैं, यह तो विज्ञजन ही जानें। आगम में लिखा है मिथ्यादृष्टि के नय नहीं होते हैं और भगवान केवली के भी पूर्ण प्रमाणज्ञान होने से नय आंशिक ज्ञान नहीं हैं, इसलिये नय तो चौथे गुणस्थान से बारहवें गुणस्थानवर्ती साधक के ही होते हैं। अत: चौथे से आगे के गुणस्थानों में जब आगम सम्यग्ज्ञान बतलाता है तो फिर सातवें तक अथवा दसवें गुणस्थान तक निश्चय निरपेक्ष व्यवहार सम्यक्रूप कैसे रह सकता है? अर्थात् निश्चय के बिना व्यवहाराभास ही है।

कुछ बंधु एक तर्क उपस्थित करते हैं कि निश्चयनय और व्यवहारनय जुदी बात है और निश्चय-व्यवहार धर्म अलग है। उनसे पूछा जाता है कि रागरूप व्यवहार रत्नत्रय को व्यवहार धर्म किस नय से कहा? और शुद्धात्मपरिणतिरूप पर्याय को निश्चय धर्म किस नय ने कहा? यदि निश्चय व्यवहारनय नहीं हो तो निश्चय व्यवहार धर्मों का पता चल सकता है क्या? जरा पक्षपात छोड़कर सोचने की बात है कि बिना शुद्धात्म तत्त्व को जाननेरूप निश्चय के बिना चौथे आदि गुणस्थानों में यदि केवल व्यवहार धर्म ही हो तो ऐसा व्यवहार रत्नत्रय तो जीव ने अनंत बार पालन

करके नवमें ग्रैवेयक तक की पर्याय प्राप्त कर ली। फिर उस व्यवहार रत्नत्रय में क्या कमी रह गई थी ? जो इस जीव का भव-भ्रमण नहीं मिट पाया। वास्तव में एकत्व-विभक्त इस शुद्ध आत्मा का निश्चय स्वरूप इस जीव ने कभी अनुभव में नहीं लिया, इसीलिये केवल व्यवहार से इसका कार्य सिद्ध नहीं हो पाया।

सोचने की बात है छठे गुणस्थानवर्ती भावलिंगी मुनि के तथोक्त केवल व्यवहार रतनत्रय ही हो और जरा सा भी निश्चय नहीं हो तो उनके समान द्रव्यलिंगी मुनि जो शुक्ललेश्या के धारक हैं, उनमें और इन भावलिंगी में क्या अंतर रह जाता है, जो एक को छठे गुणस्थानी और दूसरे द्रव्यलिंगी को मिथ्यात्वी कहते हो ? जबकि व्यवहार रत्नत्रय दोनों के समान है और निश्चय की प्राप्ति दोनों को नहीं हुई। अत: बिना निश्चय के चतुर्थ गुणस्थान का भी प्रारम्भ नहीं हो सकता।

आगम में भावलिंगी को मोक्षमार्गी और द्रव्यलिंगी को संसारमार्गी बतलाया है। सातवें और दसवें गुणस्थान तक केवल व्यवहार मोक्षमार्ग कहकर निश्चय को बिल्कुल उड़ा देना गजब का साहस है। श्री कुन्दकुन्द स्वामी दर्शनपाहुड़ में 'दंसण मूलो धम्मो' कहकर मोक्षमार्ग जो संवर निर्जरारूप है, उसका प्रारम्भ भी सम्यग्दर्शन से ही बतलाते हैं। सो क्या दर्शन पाहुड़ में भी व्यवहार सम्यग्दर्शन का ही अभिप्राय है ? धर्म की परिभाषा 'वस्तु सहावो धम्मो' अर्थात् वस्तु के निजी स्वभाव को धर्म कहते हैं। व्यवहार रत्नत्रय रागरूप होने से वस्तु का निजी स्वभावरूप नहीं है, वस्तुस्वभावरूप धर्म तो स्वाश्रित आंशिक शुद्धतारूप अविकारी निश्चय धर्मरूप पर्याय ही हो सकती है। यदि व्यवहार सम्यग्दर्शन आदि ही सच्चे मोक्षमार्ग होते तो समयसार की ग्यारहवीं गाथा में 'भूयत्थ मस्सिदो खलु सम्माइट्ठी हवइ जीवो।' अर्थात् भूतार्थ निश्चय का आश्रय लेते हैं, वे ही सम्यग्दृष्टि हैं। इसकी टीका में श्री अमृतचंद्राचार्यदेव लिखते हैं—'भूतार्थमाश्रयन्ति त एव सम्यक् पश्यन्त: सम्यग्दृष्टयो भवंति, न पुनरन्ये कतक स्थानीयत्वात् शुद्धनयस्य। यत: प्रत्यगात्मादर्शिभि: व्यवहारनयो नानुसर्तव्य:।' इसमें स्पष्ट लिखा है कि जो शुद्धनिश्चयनय का आश्रय लेते हैं, वे ही सम्यक् अवलोकन करने से सम्यग्दृष्टि है। 'न पुनरन्ये' अर्थात् जो शुद्ध निश्चयनय का आश्रय नहीं लेते, वे चाहे ग्यारह अंग के पाठी हों, समिति आदि व्यवहार में निपुण हों तो भी कभी सच्चे सम्यग्दृष्टि नहीं हो सकते हैं।

इसी भाव को प्रवचनसार २३९ की टीका में और भी स्पष्ट किया है। 'अत: आत्मज्ञानशून्य आगम ज्ञानतत्त्वार्थश्रद्धान संयतत्त्व यौगपद्यमप्यकिंचित्करमेव।' अर्थात्—इसलिये आत्मज्ञान शून्य आगमज्ञान, तत्त्वार्थ-श्रद्धान-संयतत्त्व की युगपत्ता भी अकिंचित्कर (व्यर्थ) ही है।

पंचाध्यायी में लिखा है 'अस्ति चैकादशांगानो ज्ञानं मिथ्यादृशोऽपि यत्। नात्मोपलब्धिरस्यास्ति मिथ्याकर्मोदयात्परम्॥ अर्थात् बिना आत्मोपलब्धिरूप निश्चय के तत्त्वार्थ श्रद्धान, ग्यारह अंग का ज्ञाता भी मिथ्यादृष्टि है।

समयसार गाथा २७२ में कहा है कि:—

एवं व्यवहावरनयः प्रतिषिद्धो जानीहि निश्चयनयेन।
निश्चयनयाश्रिताः पुनर्मुनयः प्राप्नुवंति निर्वाणम्॥१७२॥

अन्वयार्थ—इसप्रकार (पराश्रित) व्यवहार, निश्चयनय के द्वारा निषिद्ध जान; निश्चयनय के आश्रित मुनि निर्वाण को प्राप्त होते हैं।

टीका—स्वाश्रित-आत्माश्रित निश्चयनय है, पराश्रित व्यवहारनय है। यहाँ, पूर्वोक्तप्रकार से पराश्रित समस्त अध्यवसान बंध का कारण होने से मुमुक्षुओं को उसका निषेध करते हुए ऐसे निश्चयनय के द्वारा वास्तव में व्यवहार का ही निषेध कराया है, क्योंकि व्यवहारनय के भी (शुभाशुभ अध्यवसाय के समान) पराश्रयता समान ही है। और इसप्रकार यह व्यवहारनय (=व्यवहार का विषय जो कि पराश्रित होने से) निषेध करनेयोग्य ही है। क्योंकि स्वाश्रित-आत्माश्रित निश्चयनय का आश्रय करनेवाले ही (कर्मों से) मुक्त होते हैं और पराश्रित व्यवहार का आश्रय तो एकांततः मुक्त नहीं होनेवाला अभव्य (-तथा भव्य) भी करता है। समयसार गाथा १२ में तथा टीका में जो व्यवहारनय का उपदेश का कथन है, वहाँ स्पष्ट कहा है कि (साधकदशा के भेद जो सद्भूत असद्भूत व्यवहारनय के विषय हैं, वह सविकल्प दशा में) उसी काल जाना हुआ प्रयोजनवान है अर्थात् जानने के लिये ही उपादेय कहना तो ठीक है किंतु वीतरागता के लिये आश्रययोग्य मानना, वीतरागतारूप निश्चय धर्म का निश्चय से कारण मानना, वह मिथ्यात्व है, व्यवहार रत्नत्रय-निमित्त है, उसे मिथ्यात्व नहीं कहा है।

अवस्तु को अभूतार्थ कहते हैं तो व्यवहारनय और उनके विषय सर्वथा अभूतार्थ नहीं हैं, किंतु जो पराश्रितभाव है, वह स्वाश्रित वीतरागभाव नहीं है, उसे भूमिकानुसार निमित्तमात्रपना बतलाने के लिये 'है' ऐसा कहना व्यवहार से भूतार्थ है किंतु निश्चयनय अपेक्षा सभी व्यवहार अभूतार्थ ही है। मोक्षमार्ग वीतरागभाव ही है, उसके लिये व्यवहार सर्वथा आश्रय करने योग्य नहीं है इस अपेक्षा सर्वथा अभूतार्थ है। ऐसा प्रथम दृढ़ श्रद्धान, स्वीकार करने के बाद व्यवहारनय जाननेयोग्य है; हेयबुद्धि से व्यवहार में उपादेय है, ऐसे नय विभाग को प्रथम से ही समझना चाहिये।

(क्रमशः)

श्री दिगम्बर जैन विद्यार्थी-गृह, सोनगढ़

परीक्षा-पत्र

[छहढाला - प्रवेशिका में से]

प्रश्न १ (क) सारे जगत में सार वस्तु क्या है ? उसको प्राप्त करने का उपाय क्या है ?

उत्तर—(क) सर्वज्ञ वीतराग कथित-वीतरागता और केवलज्ञान साररूप है और सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र उसका उपाय है। राग होना उसका उपाय नहीं है।

प्रश्न २ (ख) मोह को महामद क्यों कहा ?

उत्तर—(ख) मिथ्यात्व सम्बन्धी स्वरूप में असावधानता को दर्शनमोह कहते हैं, जो चारित्र सम्बन्धी दोष से बहुत बड़ा दोष है; इसलिये इस मोह को महामद कहा गया है। जैसे-शरीर को अपना मानना, मैं शरीर का काम कर सकता हूँ, शुभराग को भला मानना, पर द्रव्यादिक से भला-बुरा होना मानना, यह दो द्रव्यों में एकत्वबुद्धि होने से ही जीव ऐसा वास्तव में मानते हैं, उसको महामोह कहते हैं, इस प्रकार मिथ्यादृष्टि को पहिचानने का चिह्न है।

(ग) सात व्यसन के नाम—शिकार, चोरी, जुआ, मद्य, मांस, परस्त्री-सेवन, वेश्या-सेवन, इन सात बड़े पापों से भी मिथ्यात्व (स्व को भूल जाना, पर को-रागादि को अपना माननेरूप मिथ्या अभिप्राय) का बहुत बड़ा पाप है।

प्रश्न ३ (घ) नित्य निगोद किसे कहते हैं ?

उत्तर—(घ) साधारण वनस्पतिकायिक एकेन्द्रिय जीवराशि को निगोद कहते हैं और अनादि काल से उन्होंने कभी उस स्थान को छोड़ा नहीं है, इसलिये उसी को नित्य निगोद कहते हैं।

प्रश्न— उस दशा में रहने का काल कितना है ?

उत्तर— अनन्तानन्त काल है।

प्रश्न— उसे इन्द्रियाँ कितनी हैं ?

उत्तर— एक ही है, स्पर्शन इन्द्रिय।

प्रश्न— ज्ञान कितने हैं ?

उत्तर— कुमति, कुश्रुत।

प्रश्न— शरीर कितने ?

उत्तर— तीन, औदारिक, कार्माण, तैजस।

प्रश्न— नरक और निगोद के दु:ख का अन्तर लिखो ?

उत्तर— नारकी के जीव संज्ञी पंचेन्द्रिय हैं, अत: सम्यग्दर्शन प्राप्त कर सकते हैं। मिथ्यादृष्टि नारकी को भी निगोदिया जीव से बहुत कम दु:ख है।

प्रश्न— वहाँ दु:ख संयोग के कारण है या कैसे ?

उत्तर— वहाँ किसी को भी संयोग के कारण सुख-दु:ख नहीं है, अपने मोह की तीव्रता की मन्दतानुसार निज परिणाम में जितना दोष है, उतना ही दु:ख है; दूसरे के द्वारा दु:ख कहना वास्तविक दु:ख नहीं है किन्तु निमित्त बताने के लिये उपचार कथन है।

प्रश्न (ङ) चार गतियों के नाम और उनमें दु:खों का वर्णन करो ? १२ पंक्ति में लिखो, और उन चार गतियों में से कौन सी गति पसन्द करने योग्य, अच्छी है ?

उत्तर १— मनुष्य-तिर्यंच (पशु) देव और नारक ये चार गतियाँ हैं। (१) मनुष्य गति में—माता के उदर में महामलिन दशा में रहा। प्रसव कालादि के कष्ट, बालपन खेल में और अति अज्ञान में, युवावस्था तरुणी में मूर्छित रहा, वृद्धावस्था में रोगादि पक्ष पर में मोह ममत्व करने से दु:खी रहा।

(२) देवगति—इस गति में भी विषयों की चाह तृष्णा, अन्त में माला मुरझाती देख मिथ्यात्ववश हाय-हाय करते हैं, अब तिर्यंच में जाना पड़ेगा, विलाप कर-कर एकेन्द्रिय में पृथ्वीकायिक, वनस्पतिकायिक भी हो जाता है।

(३) तिर्यंच (पशु) गति—एकेन्द्रिय में तो तीव्र कलुषतारूप भावों की मलिनता से निगोद में रहता है। कभी दुर्लभ चिन्तामणि रत्न समान ऊँची पर्याय दो इन्द्रिय लट, कभी तीन्द्रिय चींटी आदि, कभी चतुरेन्द्रिय मक्खी, भ्रमरादि, कभी पंचेन्द्रिय पशु होता है। वहाँ तीव्र क्षुधा तृषा शीत उष्ण की वेदना निरन्तर है। बलवान पशुओं द्वारा निर्बल पशु खाये जाते हैं। देह में एकत्वबुद्धि से ही वहाँ दु:खी है।

(४) नरकगति—इस गति में भी संयोग के अनुसार दु:ख नहीं है, मोह के अनुसार दु:ख होता है। वहाँ भी जीव सम्यक् दर्शन अपने में प्रगट कर सकता है और उतना सुखी निरन्तर होता है।

चारों गतियाँ राग-द्वेष-मोहरूप अपने अपराध से मिलती हैं। उसी के फल स्वरूप चारों गतियाँ बन्दीगृह हैं। संसार की सर्व गतियाँ दुःख का प्रदर्शन करनेवाली होने से कोई भी गति पसंद करने योग्य नहीं है।

प्रश्न २ (क) त्रस-स्थावर का लक्षण क्या है, उनके नाम व भेद लिखो ?

उत्तर—(१) जिसे त्रस नामक नामकर्म के उदय से दो इन्द्रिय से पंचेन्द्रियपना तक प्राप्त होता है, ऐसी दशावान जीव को त्रस कहते हैं।

(२) स्थावर नामकर्म से प्राप्त पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति है शरीर जिसका, ऐसे जीव को स्थावरकायिक जीव कहते हैं।

प्रश्न (ख) अरिहन्त तथा सिद्ध भगवान संज्ञी हैं या असंज्ञी, त्रस हैं या स्थावर ?

उत्तर— दोनों संज्ञी-असंज्ञित्व से रहित केवलज्ञानी हैं। अरिहन्त भगवान शरीर सहित हैं, त्रस नामकर्म के उदयवश संसारित्व है, इसलिये त्रस हैं। सिद्ध भगवान संसार रहित हैं, त्रसत्व रहित हैं।

प्रश्न (ग) अष्ट मूलगुण के नाम और वे किसको होते हैं, लिखो ?

उत्तर— मधु (शहद), माँस, मदिरा, बड़, पीपल, पीपर (पाकर) उदम्बर और अंजर वृक्ष के फल। इन आठ अभक्ष्यों का सेवन न करके हिताहित के ज्ञान में सावधान रहनेवाले सम्यग्दृटि श्रावक को तो ये आठ मूलगुण निरतिचार होते हैं और शेष नीचे चतुर्थ गुणस्थान में भी स्थूलरूप से आठ मूलगुण होते ही हैं, श्री अमृतचन्द्राचार्य ने पुरुषार्थसिद्धि उपाय ग्रन्थ में लिखा है कि पंच उदम्बर आदि आठ महा अभक्ष का सेवन करनेवाले नाममात्र भी जैन नहीं हैं। अव्रती सम्यग्दृष्टि को स्थूलरूप से आठ मूलगुण आठ अभक्ष्य के त्यागरूप होते हैं, किंतु कुछ दोष प्रमादवश हो जाते हैं।

प्रश्न (घ) मिथ्यादर्शन के भेद तथा लक्षण लिखो ?

उत्तर— १. गृहीत और अगृहीत—जो कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र को मानने-सेवनेरूप मिथ्यात्व नया ग्रहण किया जाता है उस सम्बन्ध से मिथ्याश्रद्धा-मिथ्याज्ञान-मिथ्याचारित्र गृहीत मिथ्यादिक हैं (उनके लक्षण दूसरी तीसरी ढाल में से पढ़ लेना चाहिये, विस्तार के भय से छोड़ दिये हैं।)

अगृहीत मिथ्यात्व निश्चय मिथ्यात्व को कहते हैं। जो प्रयोजनभूत जीवादि तत्त्वों में

विपरीत श्रद्धान है। जिसके वश होनेवाला-अपने को देहादि परद्रव्य का कर्ता-भोक्ता-स्वामी मानता है, पर से भला-बुरा हो सकता है, मिथ्यात्व रागादि जो दु:खदाता है, उसे सुखदाता मानता है, ज्ञान-वैराग्य सुखदाता है, उसे न समझा जाये ऐसा तथा दुखदाता मानता है, विषयों की इच्छा भली मानकर निज शक्ति को खो देता है। मोक्षदशा में निज आत्मा में से उत्पन्न परिपूर्ण ज्ञान और अविनाशी सत्य सुख है और उन्हीं का अखंड अनुपम अनुभव है उसे वह नहीं मानता है, संयोग से सुख मानता है, इसलिये वे पर निमित्त चाहिये, बाह्य में सुविधा चाहिये, पुण्य बन्ध चाहिये, प्रथम पराश्रय (व्यवहार) से भला हो सकता है—ऐसी पराधीनता का ही स्व-पर में स्थापन करता है, वह महा दु:खरूप अगृहीत मिथ्यात्व के लक्षण हैं।

प्रश्न ३ (क) आत्महित के कारण ऐसे ज्ञान वैराग्य को दुखदाता मानना किस तत्त्व की भूल है ?

उत्तर— संवर तत्त्व की भूल है।

प्रश्न— भाव संवर के नाम—

उत्तर— शुद्धभाव, छठवें सातवें गुणस्थान के योग्य आंशिक शुद्ध भाव, मुनित्व, मोक्षमार्ग रूप साधकदशा, आंशिक निश्चय रत्नत्रय संवर है।

प्रश्न ३ (ख) नग्न दिगम्बर भावलिंगी मुनि को दु:खी मानना किस तत्त्व की भूल है ?

उत्तर— संवर निर्जरा तत्त्व की भूल है।

प्रश्न (ग) संसार उसका कारण और उनका लक्षण क्या ?

उत्तर— पुण्य-पाप रूप आस्रव और बन्धतत्त्व वह संसार है, वह जीव की अशुद्ध दशा है, उसका कारण मिथ्यात्व, असंयत, प्रमाद-कषाय और योग संसार का कारण है, उनके लक्षण मिथ्याश्रद्धा-मिथ्याज्ञान-मिथ्याचारित्र है।

प्रश्न— यदि शरीर, स्वपुत्र, मकान, धनादि को इस जीव का संसार माना जाये तो ?

उत्तर— उसका वियोग होते ही जीव को मोक्ष सुख प्राप्त हो जाना चाहिये किंतु ऐसा नहीं है। अज्ञान राग-द्वेष-मोह तो जीव स्वयं करता है, उसके स्थान में कर्मबन्धन के विपरीत निर्मल स्वभाववाले सम्यक् आत्मश्रद्धान-ज्ञान-चारित्र प्राप्त करे तो क्रमश: मोक्षदशा प्राप्त होती है, उसके बिना मात्र संयोग छूटने का नाम संसार छूटना माना जाये, संयोग से दु:खी और संयोग नहीं तो सुखी, ऐसा हो तो एकेन्द्रिय वृक्ष आदि

नग्न हैं, उसे स्त्री धनादि नहीं हैं तो उसे भी संसार बन्धन से मुक्त और सुखी मानना चाहिये किंतु ऐसा नहीं है।

प्रश्न (घ) निश्चय हिंसा और चोरी किसे कहते हैं ?

उत्तर— मिथ्यात्व, रागादि की उत्पत्ति करना, यही आत्मशान्तिरूप चैतन्य की जागृति का नष्ट करना है, वही निश्चय हिंसा है, असत्य वचन-छह काय जीवों का वध आदि भेद तो बाल जीवों को निमित्त का ज्ञान कराने के लिये उदाहरण मात्र है, जीव पर का कुछ भला-बुरा नहीं कर सकते, हाँ—उस प्रकार के मारने-बचाने के हिंसा-अहिंसा के भाव अपने में कर सकते हैं।

चोरी—अपने ज्ञाता-दृष्टा स्वरूप को भूलकर पर को अपना मानना, पर की अवस्था का ग्रहण-त्याग मैं कर सकता हूँ, यह निश्चय से चोरी है।

प्रश्न — लोगों की दृष्टि में-बाह्यहिंसा-चोरी की क्रिया को हिंसा-चोरी कहते हैं, उसमें भी उसके अभिप्राय अनुसार दोष समझना चाहिये।

प्रश्न (ङ) आत्मा के खास भावों के नाम, उनमें से सबसे महान और सबसे अन्तिम भाव का वर्णन करो ?

उत्तर— औपशमिक, क्षायोपशमिक, क्षायिक, औदयिक और पारिणामिक ये पाँच भाव हैं, उनमें पारिणामिकभाव-त्रिकालिक एकरूप अंत:तत्त्व, कारणपरमात्मा अर्थात् सामान्य द्रव्यस्वभाव है, वह सबमें महान है और अंतिम महान में क्षायिकभाव है जो आत्मा की पूर्ण निर्मल दशा है।

प्रश्न (च) जीव के भाव तथा इच्छायें पलटती हैं, उनका मूल कारण क्या है ? उनका नाम क्या है ?

उत्तर — द्रव्यत्वगुण उनमें निमित्तरूप मूल कारण है अथवा उत्पाद-व्ययरूप पर्यायशक्ति कारण है और भाव पलटने में जिस गुण की जो पर्याय पलटती है, वही गुण उनका उपादान कारण है, इच्छा पलटने में चारित्र गुण का अशुद्ध उपादान कारण है।

प्रश्न ४ (क) कौन से द्रव्य का सर्वथा नाश होगा ?

उत्तर— किसी भी द्रव्य का कभी भी नाश नहीं होगा।

प्रश्न— कथंचित् नाश किसे कहते हैं ?

उत्तर— गुण की निरन्तर नई-नई अवस्था प्रगट होकर वह दूसरे समय नष्ट होती है, बदलकर गुणरूप हो जाती है, उसे कथंचित् (पर्याय अपेक्षा) नाश कहा जाता है।

प्रश्न (ख) आत्मज्ञानं.....यह श्लोक और उसका अर्थ ?

उत्तर— आत्माज्ञानं स्वयंज्ञानं, ज्ञानात्दन्यत्करोति किम्।
परभावास्य कर्ताऽत्मा मोहोऽयं व्यवहारिणाम्॥
अर्थ— आत्मा ज्ञान है, स्वयं ज्ञान है; अतः ज्ञान के सिवा अन्य क्या कर सकता हैं ? आत्मा पर की कुछ भी क्रिया कर सकता है, ऐसा मानना वह व्यवहारी (अज्ञानी) जीवों का मोह है।

प्रश्न (ग) जिसको धर्म (सुख) प्रगट करना ही हो तो उसे प्रथम क्या करना चाहिये ?

उत्तर— प्रथम श्रुतज्ञान द्वारा ज्ञानस्वरूप आत्मा का निर्णय करके निश्चय सम्यग्दर्शन प्रगट करना चाहिये।

प्रश्न (घ) सामनेवाले जीव मरे तो पाप और बचे तो पुण्य हो, यह मानना सत्य है ? उसका दृष्टान्त सहित वर्णन।

उत्तर— नहीं, पर के कारण इस जीव को पुण्य-पाप नहीं है किन्तु अपना भाव-परिणामों के अनुसार है। जैसे—ईर्यासमिति में सावधान मुनिराज गमन कर रहे हैं, फिर भी पाँव के नीचे छोटा प्राणी आ पड़ता है, मर जाये अथवा डाक्टर दया भाव से रोगी का फोड़ादि चीरते हैं किंतु हिंसा का अर्थात् दुःख देने का भाव नहीं होने से पाप नहीं होता और किसी ने मारने के अभिप्राय से कुछ (पत्थर आदि) फेंका किंतु उनके आयु के बल से वह प्राणी बच गया, फिर भी मारने की इच्छावान को पाप ही हुआ है। अतः हिंसा-अहिंसा अपने भावों पर निर्धारित करना चाहिये।

प्रश्न ५ (क) अम्ब अम्बरीष कौन से देश का राजा है, वह क्या काम करता है ?

उत्तर— वह राजा नहीं है किन्तु उस नामवाला भवनवासी देव है जो अपनी कषायवश नीचे तीसरे नरक तक जाकर नारकियों को परस्पर पूर्वभव के वैर याद कराकर कुत्तों के समान भिड़ाने का पापभाव ज्यादा करते हैं।

प्रश्न (ख) व्यवहार और निश्चय सम्यग्दर्शन का लक्षण क्या है ?

उत्तर— परद्रव्यों के और भेद के आश्रयरूप सात तत्त्वों की श्रद्धारूप शुभभाव निश्चय

सम्यक्त्व की भूमिका में होता है, उसे व्यवहार सम्यग्दर्शन कहते हैं और स्वाश्रित, शुद्धात्मा का आश्रय करनेवाला निज शुद्धात्मा ही उपादेय है, ऐसा निर्विकल्प दृढ़ श्रद्धान जो विपरीत अभिप्राय रहित ही हो, उसे निश्चय सम्यग्दर्शन कहते हैं।

प्रश्न— निश्चय सम्यक्त्व कहाँ से शुरु होता है और कहाँ तक रहता है ?

उत्तर— चतुर्थ गुणस्थान से उत्पन्न होता है और नष्ट नहीं होकर मुक्तदशा में अनंत काल तक चालू रहता है।

प्रश्न (ग) लोक के भेद, वनस्पति के भेद लिखो ?

उत्तर १— ऊर्ध्वलोक, मध्यलोक, नारकलोक।

उत्तर २— (वनस्पति के भेद—) साधारण और प्रत्येक, जो एक शरीर में अनंत जीव एक साथ रहे। जन्म-मरण करे, वह साधारण है और एक शरीर में एक जीव रहता है, उस जीव को प्रत्येक नामकर्मवाला प्रत्येक जीव कहते हैं।

प्रश्न— पंचेन्द्रिय के भेद ?

उत्तर— संज्ञी और असंज्ञी।

प्रश्न— जीव के भेद—

उत्तर— संसारी और मुक्त। संसारी के दो भेद—त्रस और स्थावर। त्रस के चार भेद—दो इंद्रिय से पंचेन्द्रिय तक, स्थावर के पाँच भेद, १४ मार्गणाओं, १४ जीव समासों, १४ गुणस्थानों के भेद से भेद है।

प्रश्न (घ) सामान्य-विशेष के भेद लिखो ?

उत्तर— ध्रुवरूप द्रव्य और उनके अनंत गुण जो सत्तारूप हैं, उनको सामान्य और पर्याय-भेद-अंश, उत्पाद-व्यय को विशेष कहते हैं। द्रव्य में सामान्य गुण भी हैं।

प्रश्न (ङ) सामान्य गुण कितने द्रव्यों में होते हैं किस द्रव्य में नहीं होते ? कारण बताइये ?

उत्तर— वे छहों द्रव्यों में सभी में रहते हैं, किसी में न हों, ऐसा कभी नहीं हो सकता कारण कि वे सभी द्रव्यों में रहनेवाले हैं, सबका गुण अपने-अपने द्रव्य में ही रहता है और वह हरेक द्रव्य में संख्या अपेक्षा अनंत हैं, मुख्य छह हैं।

प्रश्न ६(१) कालद्रव्य और आकाशद्रव्य का आकार होता है ?

उत्तर— हाँ, कारण कि प्रदेशत्वगुण सामान्य गुण होने से सभी द्रव्यों में होता ही है, जिसके

कारण प्रत्येक द्रव्य अपने-अपने आकार सहित है, आकार भी सबके अलग-अलग स्वाधीन हैं।

प्रश्न (२) सिद्ध भगवान को निरंजन निराकार क्यों कहा ?

उत्तर— उसको मूर्तिक पुद्गलमय जो शरीर, उसका आकार नहीं है; इसलिये निराकार और पुण्य-पाप रूपी मल मैल जरा भी नहीं है, इसलिये निरंजन कहते हैं।

नीचे जगह में क्या लिखना ? उसके जवाब—

(३) पाँच इन्द्रियवाला जीव कहना - वह (असद्भूतव्यवहार) नय है।

(४) ज्ञानवाला जीव कहना - वह (सद्भूतव्यवहार) नय है।

(५) घी का घड़ा कहना - वह (उपचारवाला व्यवहार) नय है।

(६) मिट्टी के घड़े को मिट्टी का घड़ा कहना - वह (निश्चय) नय है।

(७) शुभभावरूप व्यवहार करते-करते आत्महित रूप धर्म होता है - ऐसा वास्तव में मानना वह (मिथ्यादर्शन) है।

(८) शुभभाव से (मात्र अघाति चार कर्म में पुण्यबंध) होता है। आत्महित रूप धर्म - (वीतराग भाव से) होता है - उसमें अनेकांत लगाइये—

स्वाश्रय निश्चय रत्नत्रयरूप वीतराग भाव से ही धर्म होता है, सराग भाव से धर्म नहीं होता, नहीं होता, नहीं होता यह अनेकांत सम्यक् अनेकांत है। शुभरागरूप व्यवहार यदि निश्चय वीतराग अंश सहित हो तो सहचर निमित्त भूमिकानुसार कैसा होता है उसका ज्ञान कराने के लिये (शुभराग को) असद्भूतव्यवहारनय से धर्म कहा है। यह उपचार धर्म है, निश्चय धर्म नहीं है—ऐसा जानना सम्यक्ज्ञान है।

प्रश्न (क) द्रव्य के अनेक नाम लिखो ?

उत्तर— वस्तु, पदार्थ, अर्थ, तत्त्व, भाव, भाववान, गुणी, अंशी, सामान्य विशेषात्मक वस्तु, नित्य अनित्य, भेद अभेद, एक अनेकात्मक गुण पर्यायों का पिण्ड, गुणों के समूह, सामान्य विशेष सत्तात्मक गुणों के समूह को द्रव्य कहते हैं।

गुणों के नाम— ध्रुव सत्तात्मक शक्ति, [जो द्रव्य के सम्पूर्ण भाग में (सम्पूर्ण स्वक्षेत्र में) और सब अवस्थाओं में (नित्य) व्यापी रहें, उसे गुण कहते हैं।] अस्तित्वादि सामान्य गुण है, ज्ञानादि, स्पर्शादि, गति हेतुत्वादि उस-उस जाति के द्रव्य के विशेष

गुण हैं। त्रैकालिक शक्ति, नित्यस्वभाव, ध्रुवस्वभाव, सहभावी पर्याय, सहभावी विशेष, ये गुणों के नामान्तर हैं।

पर्याय के अनेक नाम—विशेष, अंश, भेद, छेद, गुण की क्रिया, व्यापार, कार्य, काम, परिणति, दशा, अवस्था, हालत, परिवर्तन, वर्तन, प्रवर्तन, उत्पाद-व्ययरूप क्रिया, अनित्य धर्म।

प्रश्न (ख) दर्शन, सम्यक्त्व, सम्यग्दर्शन, इच्छा, शांति, यह द्रव्य है, गुण हैं कि पर्याय है-गुण हो तो कौनसा पर्याय हों तो किस गुण की ?

उत्तर— दर्शन गुण है, जिसका कार्य सामान्य भाव का प्रतिभास है। (जिसमें भेद विवक्षा का अभाव है, ऐसा सामान्य)

सम्यक्त्व गुण है और श्रद्धा-गुण की पर्याय को भी सम्यक्त्व कहा जाता है, सम्यग्दर्शन यह श्रद्धा-गुण की पर्याय है। शांति और इच्छा चारित्र गुण की पर्याय है।

जिनेन्द्र पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव

राजकोट-१२-५-६५ अतिशय पवित्र जैनधर्म-प्रभावना-उत्पादक नित्य महोत्सव है सार्थक शुभनाम जिनका, ऐसा महामनोज्ञ समवसरण जिनमन्दिर तथा मानस्तम्भ (जिनेन्द्र-धर्म वैभव स्तम्भ) सुन्दरकला-कौशल से तैयार हुए जिसका 'पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव' परमोपकारी श्री कानजी स्वामी तथा श्री रामजीभाई (प्रमुख श्री सौराष्ट्र तथा राजकोट दिगम्बर जैन समाज) के तत्त्वावधान में सानन्द सम्पन्न हुआ।

प्रतिष्ठाचार्य पंडित श्री नाथूलालजी शास्त्री संहितासूरि इंदौर थे। प्रतिष्ठा कराने में श्री मूलजीभाई तथा दामोदरभाई लाखाणी के सुपुत्रों, श्री मोहनलाल कानजी घीया तथा उनके सुपुत्रों

श्री नानालालभाई जसाणी परिवार श्री आनन्दभाई आदि, श्री पंडित खेमचंदभाई सेठ, श्री लालचंद्रभाई, श्री डा. नवरंगभाई, श्री डा. चन्दूभाई कामदार आदि अन्य समस्त राजकोट दिगम्बर जैन समाज थे। मुख्य आकर्षण में पूज्य स्वामीजी के समयसार कलश टीका ऊपर प्रवचन तथा रात्रि को ४५ मिनिट शंका-समाधान थे। जिनका जैन जैनेतर समाज ने अति-रुचिपूर्वक लाभ लिया।

बैशाख सुदी १ से १२ तक महोत्सव रहा। श्रीजी को प्रतिष्ठा मंडप में विराजमान किये गये। शान्तिजाप हुये।

बैशाख सुदी २ को श्री स्वामीजी की जन्म-जयंती बड़े उत्साह से मनाई गई, रात्रि को ७.०० से ८.०० बजे तक ४० बालिकाओं द्वारा धार्मिक संवाद, नाटक हुए।

बैशाख सुदी ३ से ८ तक बीस तीर्थंकर जिन मंडल विधान महापूजा, गर्भकल्याणक की पूर्व क्रिया का भाव प्रदर्शन, गर्भकल्याणक पूजा, वेदीशुद्धि, कलश ध्वजशुद्धि विधान, अजमेर भजन मंडली तथा श्री बाबूलाल झांझरी इंदौर का कार्यक्रम हुआ।

बैशाख सुदी ९-१० विधि नायक श्री आदिनाथ भगवान का जन्मकल्याणक, हाथी पर इन्द्र द्वारा विराजमान करके मेरुपर्वत पर अभिषेक के विशाल जूलूस, जिसमें भजन, नृत्य भक्ति के भव्य कार्यक्रम हुए। तत्पश्चात् दीक्षाकल्याणक व पूजन एवं वन में श्री कानजीस्वामी का वैराग्य प्रेरक प्रवचन हुआ। रात्रि को श्री ऋषभदेव भगवान के १० पूर्व भवों का बड़े-बड़े चित्रों द्वारा भाव प्रदर्शन किया गया। जिसका श्री पंडित नाथूलालजी शास्त्री प्रतिष्ठाचार्य सुंदर शैली से वर्णन करते थे। बाद में बाहुबली-वैराग्य का रोचक नाटक खेला गया।

बैशाख सुदी ११ मुनिराज आदिनाथ प्रभु का आहारदान। श्री स्वामीजी के कर-कमलों से जिन प्रतिमाओं पर अंकन्यास-विधि, केवलज्ञानकल्याणक, समवसरण रचना, पूजन, रात्रि को नमि-विनमि प्रकरण तथा भरत की वैराग्य परीक्षा के नाटक, श्री बाबूभाई तथा भजनमण्डली अजमेर द्वारा भावपूर्ण भजन भक्ति।

बैशाख सुदी १२ निर्वाणकल्याणक, समवसरणजी तथा मानस्तम्भजी की श्री वेदीजी में जिनेन्द्र भगवान की मंगल प्रतिष्ठा विधि, कलश ध्वजारोहण विधि शान्ति यज्ञ, बड़े हाथी सहित जिनेन्द्ररथयात्रा, मार्ग में भजनमण्डली तथा श्री बाबूभाई (फतेहपुर-गुजरात) द्वारा नृत्य भजन धुन तथा भक्ति जो देखते ही बनती थी। जब रथयात्रा मन्दिरजी आ पहुँची, तब विशिष्ट पुण्यात्मा

धर्मप्रभावक पंडित बाबूभाई द्वारा सबको आश्चर्य और महिमा में उठानेवाली भक्ति की धुन में ऐसा रंग जम गया जो देखते ही बनता था। बड़े-बड़े सेठ लोग तथा अन्य दर्शक लोग भी झूमने-नाचने लगे। रात्रि को भजनमण्डली का तथा श्री बाबूभाई का ऐसा ही सुन्दर उत्साहमय नृत्य, भजन हुये, सबने धन्य अवसर माना। उत्सव में करीब दो लाख की आमदनी हुई।

बैसाख सुदी १३ को प्रातः स्वामीजी सोनगढ़ पधारे, उनकी विदाई के समय विशाल जन समुदाय था। राजकोट दिगम्बर जैन समाज को धन्यवाद।

सोनगढ़, तारीख १३-५-६५ पूज्य कानजीस्वामी का सर्व प्रथम ग्राम पंचायत, सारेगाँव तथा 'जैन शिक्षण शिविर' के विद्यार्थियों द्वारा सामूहिक स्वागत हुआ। श्री गाँधी ज्ञानमंदिर लाईब्रेरी के विशाल हाल में स्वामीजी को ले गये। स्वागत गीत के बाद लाईब्रेरी तथा ग्राम पंचायत की ओर से आर्य समाज कन्या हाईस्कूल के प्रधानाध्यापकजी ने पूज्य स्वामीजी की जीवनी सुनाई और सत्पुरुष की महान दिव्य तथा उनके द्वारा हम सब उत्तम हित का सम्पादन करें आदि कहा। तत्पश्चात् बम्बई से आये हुये श्री नवनीतभाई सी० जबेरी प्रमुख श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट सोनगढ़ को ग्राम पंचायत द्वारा तथा लाईब्रेरी ज्ञानमन्दिर अध्यक्ष के द्वारा पूज्य कानजीस्वामी का तैल चित्र अनावरण करने की प्रार्थना होने पर मंगल विधि हुई। तदनन्तर श्री नवनीतभाई ने साक्षात् ज्ञाननिधि सत्पुरुष जो सारे भारत की पवित्र विभूति है, उसके उपदेशामृत द्वारा सच्चे ज्ञान का लाभ लेकर जीवन में अपूर्व आत्महित करना ही चाहिये, ऐसी उत्तमोत्तम प्रेरणात्मक सुन्दर बात कही। बाद में ग्रामपंचायत आदि के मंत्री द्वारा उपदेशामृत को जीवन में उतारने की प्रेरणा करते हुए आभार-प्रदर्शन किया गया। वहाँ से विदाई विधि के बाद स्वामीजी स्वागत गीतों एवं बैंडवादनयुक्त जुलूस सहित जिनमन्दिर पहुँचे, दर्शन के बाद स्वाध्याय मन्दिर में पधारे। यहाँ प्रतिदिन प्रातः परमात्मप्रकाशक, दोपहर को समयसार कलश टीका पर प्रवचन, रात्रि को शंका-समाधान चालू है। शिक्षण शिविर पाँच विभागों में चलते हैं, संख्या २२५ है।

दिनांक ३०-५-६५ ब्र० गुलाबचन्द जैन

'आत्मधर्म' का उद्देश्य

पूज्य स्वामीजी की मंगल-छाया में यह 'आत्मधर्म' मासिक पिछले बीस वर्ष से अपने आत्महित साधक, कल्याणकारी लेखों द्वारा मुमुक्षुओं एवं जिज्ञासुओं की सेवा करता आ रहा है।

'आत्मधर्म' का उद्देश्य है—'आत्मार्थिता, वात्सल्य तथा देव-गुरु-धर्म की सेवा।' संत-ज्ञानीजन परम करुणा से आत्मा के अनुभव के जिस मार्ग का उपदेश दे रहे हैं, उसे झेलकर अंतर परिणमन करने के हेतु—जिसमें योग्य आत्मार्थिता का पोषण हो, साधर्मियों में परस्पर वात्सल्य की वृद्धि हो तथा आत्मार्थ में अनन्य सहायक ऐसे देव-गुरु-धर्म के प्रति परम उल्लास-भक्ति-अर्पणता जागृत हो, ऐसे लक्षपूर्वक—इस 'आत्मधर्म' का संचालन हो रहा है। इस जगत में संत चरण की कितनी महिमा है, तत्संबंधी कुछ वाक्य यहाँ दिये जा रहे हैं—(यह वाक्य 'मंगल तीर्थयात्रा' नामक गुजराती पुस्तक से लिये गये हैं।)

''सम्यग्दर्शनादिरूप परिणमित होकर भवसागर से पार हो रहे जीव स्वयं तीर्थ हैं और ऐसे मंगल तीर्थ स्वरूप संत के चरणों में वास करनेवाले मुमुक्षु अपना सम्पूर्ण जीवन ही यात्रामय समझता है। अहा, जिन संतों की चरणरज ने पर्वतों को पूज्य बनाया, उन संतों के साक्षात् चरणों की क्या बात! संत में सब कुछ समा जाता है; उसके हृदय में भगवान हैं, उसकी वाणी में शास्त्र है, उसकी कृपा दृष्टि में कल्याण है और जहाँ उसके चरण हैं, वहाँ तीर्थ है। इसलिए आराधक जीवों के दर्शन को भी तीर्थ यात्रा ही माना गया है। ऐसे अपार महिमावान तीर्थस्वरूप पूज्य गुरुदेव जैसे संत चरणों की शीतल छाया में निशदिन रहकर आत्महित साधें—यही भावना है।'

प्रौढ़ जैन शिक्षण-वर्ग

सोनगढ़ (सौराष्ट्र) हरसाल माफिक श्रावण सुदी ६ से भादवा बदी ९ (तारीख २-८-६५ से तारीख २१-८-६५) तक प्रौढ़ जैनदर्शन शिक्षण शिविर चलेगा, जैनधर्मी जिज्ञासुओं को हार्दिक आमन्त्रण है। पत्र द्वारा प्रथम से सूचना आना जरूरी है।

पता—श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

खास निवेदन

गत साल के (२०वीं साल के) आत्मधर्म के १९६४ अप्रेल से १९६५ अप्रेल तक के बारह अंग पृष्ठ संख्या ६३० सजिल्द; जिसमें उत्तमोत्तम लेख सैद्धांतिक चर्चा, तत्त्वज्ञान, प्रश्नोत्तर, पूज्य स्वामीजी के प्रवचन आदि का संग्रह होने से प्रत्येक लाईब्रेरी, जिनमंदिर, पाठशाला, तथा स्वाध्याय स्थान में रखने योग्य है, बारम्बार पढ़ने योग्य यह ध्रुव साहित्य है। उनका फिर छपाना और प्राप्त होना मुश्किल होने से २०० अंक ज्यादा छपवा रखे थे। उनकी सजिल्द फाइलें तैयार हो गई हैं। लागत मूल्य ७.५० होने पर भी ३.२५ में ही देंगे। पोस्टेज ०.७१ पैसा। [स्वाध्याय प्रेमियों से प्रार्थना है कि धर्म जिज्ञासुओं को जहाँ उचित समझें तो राय दीजिये कि आत्मधर्म की शुरु से लेकर आज तक की जितनी मिल सकें उतनी फाइलें सोनगढ़ से मंगा लें।]

पता—श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

बेचने की है

६५ फुट तक ऊँचे चढ़ सकें ऐसी लकड़ी की मजबूत फोल्डिंग सीढ़ी जो नीचे लोहे के बड़े-बड़े चक्कर-पुली द्वारा आसानी से ऊपर चलती है, चौरस आकार है, बड़ी बिल्डिंग के लिये, मील की बड़ी चिमनी के लिये, म्युनिसिपेलिटी को आग के समय, तथा इलैक्ट्रिक वायर अनुसंधान के लिये जो फोल्डिंग सीढ़ी आती है ऐसी किंतु बढ़िया काम वाली बिकाऊ है। शीघ्र लिखें।

पता:—श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

सुवर्णपुरी समाचार

सोनगढ़, तारीख ५-६-६५

परमोपकारी पूज्य कानजी स्वामी आनंद मंगलमय सुख शांति में विराजमान हैं, सबेरे प्रवचन में परमात्म प्रकाशक अध्याय २ गाथा ९७ तथा दोपहर में श्री समयसारजी कलश टीका कर्ताकर्म अधिकार चलते हैं।

उत्सवः—

श्री समवसरणजी जिनमंदिर की २४वीं वर्षगांठ का महोत्सव गुजराती बैशाख बदी ६ (मारवाड़ी जेठ बदी ६) को रथयात्रा, ध्वजा आरोहण-पूजन भक्ति द्वारा भारी उत्साह से मनाया गया तत्पश्चात् बदी ८ श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर तथा उसमें श्री समयसारजी की प्रतिष्ठा की २८वीं वर्षगाँठ का उत्सव मनाया गया।

जेठ सुदी पंचमी, श्रुत पंचमी का उत्सव हर साल माफिक ठाठबाट से मनाया गया, जिसमें गिरनारजी में श्री १०८ श्री धरसेनाचार्य द्वारा श्री पुष्पदंत आचार्य, श्री भूतबली आचार्य को जो श्रुतज्ञान मिला था, उनकी अंकलेश्वर में षट्खंडागमरूप से शास्त्र रचना की थी, यह सब दृश्यों सहित श्रुत पूजा की थी। प्रथम तो पालकी में शास्त्रजी को विराजमान करके स्वाध्याय मंदिरजी में पधराये गये थे।

खास मेहमान मेंः—

इस समय सोलापुर दक्षिण से अधिक संख्या में पंडित अनंतराजजी, एम.ए. न्यायतीर्थ तथा पंडित पद्मचंद्रजी आदि जो विद्यालय, गुरुकुल के अध्यापक थे, पंडित श्री बंसीधरजी न्याय अलंकार इंदौर खास पूज्य स्वामीजी की संगति के लिये पधारे हैं। हमेशा रात्रि को १ घंटा शंका-समाधान सहित तत्त्वचर्चा होती है।

शिक्षण वर्ग मेंः—

उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश, राजस्थान, देहली, सहारनपुर, बडौत तथा महाराष्ट्र से अच्छी संख्या में धर्म जिज्ञासुओं ने शिक्षण कक्षा में भर्ती होकर जैन तत्त्वज्ञान का अच्छी तरह लाभ लिया। शिक्षण में श्री मोक्षमार्गप्रकाशक अध्याय ७, द्रव्य संग्रह, समयसार, प्रवचनसार की अमुक गाथा तथा नय विभाग के सुमेल की चर्चा, छहढाला, जैन सिद्धांत प्रवेशिका, जिसप्रकार समझनेवालों को भाव

भासन हो, इस ढ़ंग से समझाया गया था, तारीख २-६-६५ को शिविर समाप्त किया। हर एक कक्षा के मुख्य-मुख्य व्यक्ति ने पूज्य स्वामीजी आदि का हृदय से आभार प्रगट किया।

धर्म प्रभावनामय तीर्थयात्रा

[यह समाचार देर से प्राप्त हुआ किंतु महत्वपूर्ण समझकर दिया गया है।]

फतेहपुर (गुजरात) सुप्रतिष्ठा सम्पन्न पंडित श्री बाबूभाई महेता ने ५३५ यात्री सहित श्री सम्मेदशिखर जी दिगम्बर जैन तीर्थयात्रा-संघ २ मास तक साथ में रखकर अच्छी धर्म प्रभावना की।

(तारीख १४-२-६५ से २९-२-६५) दाहौद, बड़वानीजी, ऊन-पावागिरि, सिद्धवरकूट, इंदौर, उज्जैन, (वेदी प्रतिष्ठा) मक्सी पार्श्वनाथ, गुना, बजरंगगढ़, थौवनजी, अशोकनगर, मल्हारगढ़ श्री तारणस्वामीक्षेत्र, चदेरी, ललितपुर, देवगढ़, पपौरा, अहारजी, खजुराहो, द्रोणागिरि, नैनागिरि, सागर, दमोह, कुन्डलगिरि, जबलपुर, कटनी, वाराणसी, सिंहपुरी-चंद्रपुरी, गया, मधुवन, शिखरजी यहाँ फागुन सुदी ६ को पहुँचे, १० दिन तक बड़ा भारी अभूतपूर्व उत्साह से अष्टाह्निका पर्व मनाया, वहाँ भी बाबूभाई के द्वारा सबसे ज्यादा धर्म प्रभावना हुई, लाभ लेने के लिये ३००० की संख्या में धर्मजिज्ञासु एकत्रित हुये। नन्दीश्वर मडल विधान में हमेशा इंद्रों की स्थापना, सामूहिक पूजन के बाद प्रवचन होते थे, रात्रि को भक्ति और प्रवचन। फागुन सुदी १४ को रथयात्रा में ५००० जनसंख्या थी। ईसरी से श्री पंडित बंशीधरजी इंदौर न्यायालंकार शास्त्री पधारे थे, यहाँ श्री बाबूभाई की प्रेरणा से यात्री संघ द्वारा पचास हजार रुपये बोलियों में आये थे जो बिना किसी भेदभाव से बीसपंथी तथा तेरहपंथी दोनों क्षेत्रों को दे दिये गये। तीर्थक्षेत्र वालों ने अपूर्व हर्ष प्रगट किया, आभार माना। तत्पश्चात् ईसरी, गिरडीह, कलकत्ता, खंडगिरी, उदयगिरि, धनवाद, भागलपुर, चम्पापुरी, मन्दारगिरि, गुणावा, पावापुरी, राजगृही, नालन्दा, कुन्डलपुर, पटना, आरा, अयोध्या, कानपुर, सोनागिरि, ग्वालियर, लश्कर, मथुरा, देहली, हस्तिनापुर, आगरा, शौरीपुर,

बटेश्वर, फिरोजाबाद, महावीरजी, जयपुर, पद्मपुरी, कुचामन, लाडनू, अजमेर, शिवगंज, आबू से फतेपुर।

यात्री संघ सहित श्री बाबूभाई का सर्वस्थान पर भावभीना स्वागत हुआ। दिगम्बर जैन समाज ने भोजन-पानी आदि की सुंदर व्यवस्था की, हर एक जगह प्रवचन कराया।

श्री बाबूभाई तथा यात्री संघ को उज्जैन में जिनेन्द्र वेदी प्रतिष्ठा महोत्सव में खास आमंत्रण था, अत: पूर्णतया भाग लिया, यहाँ संघ ने २२ हजार रुपये दान दिये। दाहोद सकल दिगम्बर जैन समाज का अपूर्व उत्साह था, इंदौर श्री सेठ सा० राजकुमारसिंहजी तथा समस्त जैन समाज का उत्साह भी अपूर्व था। सेठ भगवानदास शोभालालजी आदि द्वारा सागर में तथा श्री तारणतरण स्वामी की नसियां जी मल्हारगढ़ में बड़ा भारी सम्मान-प्रेम-वात्सल्य अपूर्व था। गुना-अशोकनगर-सिद्धवरकूट, ऊन-पावागिरि के भाईयों का अति आभार। वाराणसी में श्री पंडित फूलचंद्रजी, श्री पंडित कैलाशचंद्रजी, कलकत्ता में श्री मोहनलालजी पाटनी, श्री ताराचंद्रजी गंगवाल आदि सज्जनों का बहुत उत्साह एवं प्रेम था। ग्वालियर में श्री धन्नालालजी, आगरा में तथा जयपुर में श्री नेमीचंदजी पाटनी, श्री पद्मचंद्रजी, श्री पूरनचंद्रजी, श्री महेन्द्रकुमारजी सेठी, श्री कोमलचंद्रजी, कुचामन में श्री हीरालालजी, श्री राजमलजी, लाडनू में श्री सेठ गजराजजी, अजमेर में सर सेठ भागचंद्रजी सोनी, डॉ. श्री सौभाग्यमलजी, श्री माणिकचंदजी, श्री पूमनचंदजी लुहाड़िया आदि। उन सभी शहरों की जैन समाज तथा अग्रणी सज्जनों ने भाव भीगे स्वागत किये और सुविधाएँ देकर प्रवचन कराया गया तथा बहुत जगहों से दिगम्बर जैन समाज द्वारा सम्मानपत्र दिया गया। दिल्ली तथा जयपुर में भी खास उल्लिखित करने योग्य बड़ी धर्म प्रभावना हुई। स्वागत तथा प्रवचनों में बेशुमार भीड़ रहीं। श्री बाबूभाई आप सब सज्जनों का हृदय से आभार मानते हैं।

संघ की ६००० मील की यात्रा हुई। १० जगह भव्य रथयात्रा निकाली थी। सम्मेदशिखरजी में दोनों कोठियों बीच ५०००० का दान दिया, पावापुरी में करीब ४ हजार का दान दिया। अन्य सभी क्षेत्रों में प्राय: ५०० से १००० उपरान्त रुपया दान में दिया गया है, श्री बाबूभाई के अनुपम प्रवचन सुनने के लिये हजारों की संख्या में धर्म जिज्ञासु एकत्रित हो जाते थे। सब लोग बड़ी उत्सुकता से प्रवचन सुनते थे, गलतफहमी (भ्रम) दूर हो जाते थे। जैनेतर समाज भी प्राय: हरएक जगह प्रसन्नता से लाभ लेती थी।

आपमें सुसंयम, पवित्र धर्ममय विद्वत्ता, वैराग्य, मनोज्ञ वक्तापन, दानशीलता, विनय,

विवेक, विशेष-धर्मवात्सल्य, शंका-समाधान, जिनेन्द्र भक्ति से भींगा हुआ सरल हृदय आदि सद्गुण होने पर भी आप अति नम्रता से मुझे लिखते हैं कि परमोपकारी पूज्य कानजीस्वामी के परम प्रताप से शुभाशीष द्वारा इस बालक की भावना सफल हुई और श्री जिनेन्द्र देव, गुरु, धर्म के पुनीत प्रताप से मंगल यात्रा सम्पूर्ण निर्विघ्न हुई। यह सब पवित्र कार्य का परम प्रताप और यश पूज्य कानजीस्वामी का ही है। मैंने तो उन्हीं के नाम पर हुन्डी बेचकर अल्प शक्ति के अनुसार भक्ति कमाई है। इस यात्रा संघ में श्री पूनमचंद्रजी छाबड़ा इंदौर ने सुंदर व्यवस्था और अनेक प्रकार से अथक श्रमदान दिया है। श्री कोमलचंद्रजी जैन जयपुर आदि सभी कार्यकर्ता सज्जनों का मैं खास आभार मानता हूँ। श्री बाबूभाई तथा छाबड़ाजी द्वारा समाचार तो बहुत विस्तार से आये हैं किंतु सार मात्र देता हूँ। आगामी कार्तिक मास में फतेपुर से दक्षिण तीर्थ यात्रा संघ चलेगा, ऐसा प्रायः सम्भव है।

—ब्रह्मचारी गुलाबचंद जैन, सोनगढ़

सोनगढ़ समाचार

सोनगढ़ तारीख २-६-६५ यहाँ २५४ की संख्या में बाहर गाँव से आये हुए शिक्षार्थियों की ७ विभाग द्वारा जैनधर्म की पढ़ाई चलती है उनमें ९ से १२ साल के छोटे बच्चों के वर्ग में संख्या ७३ थी, लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका और जैन बालपोथी चलाई है। सोनगढ़ में बच्चे भी कितनी उमंग से शुद्धात्मा की धुन द्वारा बड़ी सभा में उपस्थित होकर जो परमात्मतत्त्व की महिमा गाते हैं, वह प्रत्यक्ष देखते ही बनती थी।

जिनवाणी मेरी माता... प्रभु सिद्ध मेरे पिता
मेरे भैया अर्हंत सहज है होना।
जिनवाणी ने ललकारा, जागृत हो साधक सारा,
मेरे बन्धु स्वरूप समझना सुगम है।

[एक बालक जोरों से बुलवाता था, अनय सब सुनकर बोले थे।]

मैं अनंत गुण का भंडार हूँ
मैं चिद्रूप प्रतापी हूँ
मैं सहजानंद स्वरूप हूँ
मैं अनंत गुणों का दरिया हूँ
मैं अनुपम सुखों से भरिया हूँ
मैं शुद्ध स्वरूपी चेतन हूँ
मैं विराट विज्ञान घन हूँ
मैं वीतराग स्वरूप हूँ
मैं सर्वज्ञ स्वभावी हूँ
मैं स्वयंभू स्वरूप हूँ
मैं प्रकाश का पुंज हूँ
मैं प्रकाश का प्रकाशक हूँ
मैं जिनेश्वर का लघुनंदन हूँ
मैं शांतस्वरूपी जीव हूँ

मैं नित चिदानंद का पिंड हूँ।
मैं परमात्म प्रकाशक हूँ।
मैं अखंड अविचल स्वरूप हूँ।
मैं पर से सदा निराला हूँ।
मैं रागादिक से भिन्न हूँ।
मैं ज्ञानानंद-अभिन्न हूँ।
मैं किसी का कर्त्ता-हर्ता नहीं हूँ।
मैं स्व का स्वामी रहता हूँ।
मैं शुद्ध अविनाशी ज्ञाता हूँ।
मैं चिदानंद भगवान हूँ।
मेरा कोई कर्त्ता-हर्ता नहीं है।
मैं चैतन्य का विलासी हूँ।
मैं पुद्गल से भिन्न हूँ।
सत् मेरा लक्षण है।

मैं प्रभुसिद्धों की जाति का हूँ
मैं अनादि पुराण पुरुष हूँ
पुरुषार्थ सिद्धि मुझसे है
मैं अतीन्द्रिय ज्ञानघन हूँ
मैं निर्मोही असंग हूँ
मैं उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य सहित हूँ।
मैं खरेखर स्वतंत्र हूँ।
मैं परमार्थ से परमेश्वर हूँ।
मैं वीर प्रभु का उपासक हूँ।
मैं अनेकांत स्वरूप हूँ।

समालोचना

सन्मतिसंदेशी - श्री टोडरमलजी विशेषांक

वर्ष १०, अंक ५, मई १९६५, पृष्ठ संख्या १००, मूल्य १.५०, वार्षिक ५) प्राप्तिस्थान-५३५, गांधीनगर, देहली-३१

आचार्यकल्प श्री पंडित टोडरमलजी विशेषांक पढ़कर अत्यानंद हुआ। मैं बहुत समय से चाहता था ठीक वैसा ही अथक श्रमसाध्य संपादन किया हुआ है। उच्च कोटि के लेखों को प्राप्त करके, ग्राहकों को महत्वपूर्ण साहित्य प्रदान करने के लिये पंडित श्री प्रकाशचंदजी शास्त्री को धन्यवाद [क्रांतिकारियों का एक ही रास्ता ऐसा चित्र देकर सम्यक् अनेकांत के धारकों के साथ उनका समन्वय करने की पंडितजी की श्रद्धा नहीं है किंतु इसप्रकार का उल्लेख भ्रम का कारण बन सकता है।]

— ब्रह्मचारी गुलाबचंद जैन

[श्री बाबूभाई मेहता (फतेपुर-गुजरात) से पत्र है, आप लिखते हैं कि पंडित श्री टोडरमलजी विशेषांक सन्मतिसंदेश को पढ़ा, बहुत आनंद आया। उसमें श्री टोडरमलजी के आदर्श जीवन का तथा साहित्य का विशेष प्रकाश और प्रचार तथा विकास होगा-ठीक मौके पर श्री पंडित प्रकाशचंदजी ने यह विशेषांक प्रगट करके एक अपूर्व काम किया है, अंक पढ़ने योग्य है।]

समयसार कलश टीका के ग्राहकों से निवेदन

यह पुस्तकें सब बिक चुकी हैं। अत: फिर छपाने के लिए यह जानना जरूरी है कि आप कितने ग्रंथ लेंगे। करीब ८०० ग्रंथों के ग्राहक होने पर पुन: उसके छपवाने की व्यवस्था की जा सकेगी, अत: पत्र द्वारा सूचित कीजियेगा।

पता—श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)।

नया प्रकाशन

छहढाला (सुबोध टीका)

पूर्वाचार्य श्री गुरुओं ने जितने भी उपदेश दिये हैं, उन सभी उपदेशों के साररूप यह पाठ्यपुस्तक है। साथ ही उन उपदेशों के कथित भाव के प्रदर्शक चित्र भी दिये हैं, जिनकी संख्या १४१ है।

बाल, वृद्ध किसी को भी आत्महित में मन लगाकर प्रसन्नता प्राप्त करना हो तो इसमें समझने की पद्धति बहुत सरल है। स्वपर में तत्त्वज्ञान का प्रचार हो, और इसके द्वारा बच्चों को भी उत्तम संस्कार प्राप्त हो, प्रसन्नता से पढ़े ही पढ़े, इसलिए शीघ्र मंगाकर प्रचार कीजिये। पृष्ठ संख्या २०८, मूल्य १.००, पोस्टेज-२० पैसा।

मिलने का पता—श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

मोक्षशास्त्र (तत्त्वार्थसूत्रजी) तीसरी आवृत्ति

तत्त्वज्ञान के जिज्ञासुओं द्वारा उसकी बहुत समय से जोरों से माँग है, जिसमें सर्वज्ञ वीतराग कथित तत्त्वार्थों का और सम्यग्दर्शन आदि का निरूपण सुगम और स्पष्ट शैली से किया गया है, सम्यक् अनेकांतपूर्वक नयार्थ भी दिये हैं, और जिज्ञासुओं के समझने के लिये विस्तृत प्रश्नोत्तर भी नय प्रमाण द्वारा–सुसंगत शास्त्राधार सहित दिये गये हैं, अच्छी तरह संशोधित और कुछ प्रकरण में प्रयोजनभूत विवेचन बढ़ाया भी है, शास्त्र महत्वपूर्ण होने से तत्त्वप्रेमियों को यह ग्रंथ अवश्य पढ़ने योग्य है, पत्र संख्या ९००, मूल्य लागत से बहुत कम मात्र ५) रखा गया है। पोस्टेज आदि अलग।

नया प्रकाशन

देशव्रतोद्योतनम् (दूसरी आवृत्ति सचित्र)

श्री पद्मनंदी पंचविंशतिका के देशव्रतोद्योतन नामक अधिकार पर सत्पुरुष श्री कानजी स्वामी के प्रवचन, हिन्दी अनुवाद श्री बंशीधरजी शास्त्र एम०ए०, प्रकाशक श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल, ५५ नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता, पृष्ठ संख्या ७८, मूल्य ०–५०, पोस्टेज २५ पैसे, श्रावक को तत्त्वज्ञान सहित षट्कर्मों को प्रतिदिन करने के विषय में, आप इस पुस्तिका को अवश्य पढ़ें इसमें उत्तम भक्तिमय प्रसंग के पाँच चित्र हैं। जो देखते ही बनते हैं।

(१) जिन प्रतिमा अंकन्यास विधि, (२) दक्षिण तीर्थ श्री बाहुबली चरणाभिषेक, (३) पौन्नूर क्षेत्र में कुन्दकुन्दाचार्य के चरणों की पूजा, आदि।

पता—श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

नया प्रकाशन

श्री प्रवचनसार शास्त्र (दूसरी आवृत्ति)

यह शास्त्र भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्य कृत पवित्र अध्यात्मसाररूप महान ज्ञान निधि है। जिसमें सातिशय निर्मल ज्ञान के धारक महामहर्षि श्री अमृतचंद्राचार्यदेव ने सम्यग्ज्ञान-दर्शन (ज्ञेय) और चारित्र अधिकार में स्वानुभव गर्भित युक्ति के बल द्वारा सुनिश्चित द्रव्य-गुण-पर्यायों का विज्ञान, सर्वज्ञ स्वभाव की यथार्थता, स्व-पर ज्ञेयों की स्वतंत्रता, विभाव, (अशुद्धभाव) की विपरीतता बताकर अंत में ४७ नयों का वर्णन भी संस्कृत टीका द्वारा ऐसे सुंदर ढंग से किया है कि सर्वज्ञ स्वभाव की महिमा सहित विनय से स्वाध्यायकर्ता अपने को धन्य माने बिना नहीं रह सकते।

श्री अमृतचंद्राचार्यदेव ने समस्त जिनागम के साररूप रहस्य को खोलकर धर्म जिज्ञासुओं के प्रति परमोपकार किया है। उसी टीका का प्रामाणिक अनुवाद, बड़े टाइप में उत्तम छपाई, बढ़िया कागज, रेगजिन कपड़ेवाली बढ़िया जिल्द, प्रत्येक गाथा लाल स्याही में छपी है। सभी जिज्ञासु यथार्थ लाभ लें, ऐसी भावनावश मूल्य लागत से भी बहुत कम, मात्र ४) रुपया रखा गया है। पृष्ठ ४७०, पोस्टेज २.१० रुपये, (किसी को कमीशन नहीं है)

(यह शास्त्र बंबई, दिल्ली, सहारनपुर, बड़ौत, उदयपुर, जयपुर, सागर, भोपाल, उज्जैन, इन्दौर, विदिशा, गुना, अशोकनगर, ललितपुर, जबलपुर, खंडवा, सनावद, दाहोद, अहमदाबाद, आदि में दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल द्वारा भी प्राप्त हो सकेगा।)

परमपूज्य श्री कानजी स्वामी के आध्यात्मिक वचनों का अपूर्व
लाभ लेने के लिये निम्नोक्त पुस्तकों का—

अवश्य स्वाध्याय करें

समयसार शास्त्र	५-०	अष्टप्रवचन (ज्ञानसमुच्चयसार)	१-५०
प्रवचनसार	प्रेस में	जैन बाल पोथी	०-२५
नियमसार	५-५०	छहढाला बड़ा टाईप (मूल)	०-१५
पंचास्तिकाय	४-५०	छहढाला (नई सुबोध टी.ब.)	०-८७
आत्मप्रसिद्धि	४-०	ज्ञानस्वभाव ज्ञेयस्वभाव	२-५०
मोक्षशास्त्र बड़ी टीका (तृ०)	५-०	सम्यग्दर्शन (तीसरी आवृत्ति)	१-८५
स्वयंभू स्तोत्र	०-६०	जैन तीर्थयात्रा पाठ संग्रह	१-४५
मुक्ति का मार्ग	०-६०	अपूर्व अवसर प्रवचन और	
समयसार प्रवचन भाग १	४-७५	श्री कुंदकुंदाचार्य द्वादशानुप्रेक्षा	०-८५
समयसार प्रवचन भाग २	४-७५	भेदविज्ञानसार	२-०
समयसार प्रवचन भाग ३	४-२५	अध्यात्मपाठसंग्रह पक्की जिल्द	५-०
समयसार प्रवचन भाग ४	४-०	'' '' कच्ची जिल्द	२-२५
[कर्ताकर्म अधिकार, पृष्ठ ५६३]		भक्ति पाठ संग्रह	१-०
मोक्षमार्ग-प्रकाशक की किरणें प्र०	१-०	वैराग्य पाठ संग्रह	१-०
'' ''द्वितीय भाग	२-०	निमित्तनैमित्तिक संबंध क्या है ?	०-१५
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला प्र०	०-६०	स्तोत्रत्रयी	०-५०
भाग-२ ०-६० भाग-३	०-६०	लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका	०-२५
योगसार-निमित्त उपादान दोहा	०-१२	'आत्मधर्म मासिक' वार्षिक चंदा	३-०
श्री अनुभवप्रकाश	०-३५	'' फाईलें सजिल्द	३-७५
श्री पंचमेरु आदि पूजा संग्रह	१-०	शासन प्रभाव तथा स्वामीजी की जीवनी	०-१२
दसलक्षण धर्मव्रत उद्यापन बृ० पूजा	०-७५	जैनतत्त्व मीमांसा	१-०
देशव्रत उद्योतन प्रवचन	६-०		

[डाकव्यय अतिरिक्त]

मिलने का पता—
श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

मुद्रक—नेमीचन्द बाकलीवाल, कमल प्रिन्टर्स, मदनगंज (किशनगढ़)
प्रकाशक—श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट के लिये—नेमीचन्द बाकलीवाल।